कुरुक्षेत्र

[सांस्कृतिक एव ऐतिहासिक सिंहावलोकन]

कुंवर बालकृष्ण 'मुजतर'



विश्वविद्यालय प्रकाशन गृह
नवीन शाहदरा-दिल्ली-३२

प्रकाशक
विश्व विद्यालय प्रकाशन गृह
दिल्ली ३२



© बालकृष्ण 'मुजतर'



प्रथम संस्करण
अगस्त सन् १९६५



मूल्य १२.५०



मुद्रक
रामाकृष्णा प्रेस
कटरा नील, दिल्ली

समर्पण

अपने श्रद्धेय पिता
पं० राधाराम भारद्वाज
को

—रामकृष्ण

भ्रात कष्टमहो महान्स नृपति सामन्त चक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्र बिम्बानना ।
उद्रिक्त स च राजपुत्र निवहस्ते बन्दिनस्ता कथा
सर्व यस्य वशादगात् स्मृति पदं कालायत स्मनम ॥

—भर्तृहरि

पहले यहाँ कैसी सुन्दर नगरी थी, उसका राजा कैसा उत्तम था,
उसका राज्य कितनी दूर तक था, उसके निकट सभा कैसी
होती थी और चन्द्रमुखी स्त्रियाँ कैसी शोभायमान
थीं राजपुत्रों का समूह कैसा प्रबल था,
कैसे वह बन्दीगण थे और कैसी कथा
कहते थे। अब वह सब जिस
काल के वश होकर लुप्त हो
गए उस काल को
नमस्कार है।

अपनी बात

कुरुक्षेत्र का सम्बन्ध आज के युग से नहीं अपितु इसका सम्बन्ध सृष्टि के जन्म के साथ-साथ चलता है। कुरुक्षेत्र धार्मिक ऐतिहासिक पौराणिक, अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से क्या महत्व रखता है, इस पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालने का यत्न किया गया है और यदि लेखक इस प्रयास में सफल हो गया है, जिसका निर्णय पाठकगण ही कर सकते हैं तो वह अपने को धन्य समझेगा।

पुस्तक के निर्माण की कहानी भी अनोखी और ऐतिहासिक वस्तु बन गई। पुस्तक की रचना पंजाब के भूतपूर्व राज्यपाल श्री चन्द्रेश्वरप्रसाद नारायणसिंह के आदेशानुसार की गई क्योंकि इस प्रकार की पुस्तक बाजार में उपलब्ध न थी। पुस्तक लिखी गई और वह आज प्रकाशित भी हो गई है। इस पुस्तक के निर्माण तथा प्रकाशित करने में श्री करतारसिंह दलाल पुस्तकालयाध्यक्ष कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय पुस्तकालय का विशेष योग है। उनकी अमूल्य सहायता से ही यह पुस्तक आपके सम्मुख है।

प्रस्तुत पुस्तक आपके सम्मुख है। कैसी है, इसका निर्णय विद्वान जन ही कर सकते हैं। प्रत्येक लेखक को अपनी कृति अच्छी लगती है, अतः इसका मूल्यांकन मेरे द्वारा समुचित रूप से न हो सकेगा।

अन्त में मैं पुनः उन सभी साथियों सहयोगियों एवं वृद्ध कुरुक्षेत्र-वासियों का हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनके सहयोग एवं परामर्श के द्वारा इस पुस्तक का निर्माण हो सका है।

राजमहल कुरुक्षेत्र
१ जनवरी सन् १९६५

विनीत
लेखक



विषय-सूची

सनातन सत्य

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि यूनान और मिस्र की प्राचीन सभ्यताओं की उन्नति किलों की दीवारों में हुई। आज की यूरोपीय सभ्यता ने भी पत्थरों और ईंटों के सख्त क्रूर घेरे और बद्ध वातावरण में भेद बोने और पुष्ट हुई। संसार के समस्त दार्शनिकों का मत है कि वातावरण की गहरी और अमिट छाप प्राणियों पर अवश्य पड़ती है। अतः यूनान, मिस्र और यूरोपीय सभ्यता पर और उस सभ्यता में जन्म लेने अथवा पलने वालों के आचार विचार, रहन सहन मन और बुद्धि पर इन सख्त दीवारों और पथरीली किला बन्दियों का गहरा प्रभाव पड़ा। अतः इन सभ्यताओं और इनका अनुकरण करने वालों के चिन्तन का ढंग उदार न रहकर संकीर्ण हो गया। जिस प्रकार किलों में दीवारें होती हैं, उसी प्रकार यूरुप के लोगों में भी अलगाव की प्रवृत्ति है। एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को और व्यक्ति से प्रकृति को अलग देखने के वे लोग अभ्यासी हो गए हैं। सोचने की यह प्रणाली हमारे चारों ओर एक ऐसी सुदृढ़ और अभेद्य दीवार बना देती है कि जिसको तोड़कर प्रत्येक सत्य को हृदयों तक पहुँच पाने में घोर और विकट संघर्ष करना पड़ता है।

आर्यों ने इस देश में बलखाती घुनघुनाती नदियाँ हरे हरे दूर्वादल से ढकी मखमली घाटियाँ विशाल मैदान हिम की श्वेत चादर ओढ़े हिमालय के गगनचुम्बी शिखर, फल फूलों से लदे वृक्ष मधुर-मधुर गाते चहचहाते पक्षी देखे। वे सुगमता से इस वातावरण में घुलमिल गए। सूर्य की तीखी धूप से बचने के लिए हरे-हरे पत्तों वाली टहनियों ने उनको अपनी गोद में स्थान दिया और तीव्र तूफानी आँधियों से उनकी रक्षा करके अपने कोमल चिकने और नर्म आँचल में शरण दी। उनके पशुओं को सस्य, श्यामला चरागाहें और कन्द-मूल कपड़े झरने मिले। यज्ञों की अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए समिधा और लकड़ियाँ मिलीं रहने के वास्ते कुटियाओं को बनाने का सामान मिला। इन अनेक सुविधाओं के कारण आर्य निर्भय होकर ग्राम-ग्राम में अपने जनपद बना कर रहने लगे।

इस प्रकार हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का उदय और विकास खुले वनों में हुआ। विस्तृत क्षेत्र में जन्म व विकास पाने के कारण हमारी सभ्यता और संस्कृति का चेहरा निखरा और उसमें एक महानता और विशेषता आ गई। प्रकृति के फैले हुए जीवन से हमें जीवन मिला प्रकृति हमारी माता बनी उसकी गोद में ही हमें प्रेरणा मिली और हम पले। हमारी सभ्यता और संस्कृति पर प्रकृति की गहरी छाप स्पष्ट दिखाई देती है। प्रकृति माँ से हमने सीखा है कि सत्य की कोई सीमाएँ नहीं समस्त संसार सत्य की सीमा के भीतर है।

सनातन सत्य

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि यूनान और मिस्र की प्राचीन सभ्यताओं की उन्नति किलों की दिवारों में हुई। आज की यूरोपीय सभ्यता ने भी पत्थरों और ईंटों के सख्त घुर-घरे और जड़ वातावरण में जन्म लिया और युवा हुई। संसार के समस्त दार्शनिकों का मत है कि वातावरण की गहरी और अमिट छाप प्राणियों पर अवश्य पड़ती है। अतः यूनान, मिस्र और यूरोपीय सभ्यता पर और उस सभ्यता में जन्म लेने अथवा पलने वालों के आचार विचार, रहन सहन मन और बुद्धि पर उन सख्त दिवारों और पथरीली किला बन्दियों का गहरा प्रभाव पड़ा। अतः इन सभ्यताओं और इनका अनुकरण करने वालों के चिन्तन का ढंग उदार न रहकर संकीर्ण हो गया। जिस प्रकार किलों में दिवारें होती हैं उसी प्रकार यूरुप के लोगों में भी अलगाव की प्रवृत्ति है। एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को एक ग्राम से दूसरे ग्राम को और व्यक्ति से प्रकृति को अलग देखने के वे लोग अभ्यासी हो गए हैं। सोचने की यह प्रणाली हमारे चारों ओर एक ऐसी सुदृढ़ और अभेद्य दिवार बना देती है कि जिसको तोड़कर प्रत्येक सत्य को हृदयों तक पहुँच पाने में घोर और विकट संघर्ष करना पड़ता है।

आर्यों ने इस देश में बलखाती घुमघुमाती नदियाँ हरे हरे दूर्वादल से ढकी मखमली घाटियाँ विशाल महान हिम की श्वेत चादर ओढ़े हिमालय के गगनचुम्बी शिखर, फल-फूलों से लदे वृक्ष मधुर-मधुर गाते चहचहाते पक्षी देखे। वे सुगमता से इस वातावरण में घुलमिल गए। सूर्य की तीखी धूप से बचने के लिए हरे-हरे पत्तों वाली टहनियों ने उनको अपनी गोद में स्थान दिया और तीव्र तूफानी आंधियों से उनकी रक्षा करके अपने कोमल बिछौने और गर्म आंचल में शरण दी। उनके पशुओं को घास, श्यामला चरागाहें और कन्द-मूल चखने चरने मिले। यज्ञों की अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए समिधा और लकड़ियाँ मिलीं रहने के वास्ते कुटियाओं को बनाने का सामान मिला। इन अनेक सुविधाओं के कारण आर्य निर्भय होकर ग्राम-ग्राम में अपने जनपद बसा कर रहने लगे।

इस प्रकार हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का उदय और विकास खुले वनों में हुआ। विस्तृत क्षेत्र में जन्म व विकास पाने के कारण हमारी सभ्यता और संस्कृति का बेहद विस्तार और उसमें एक महानता और विशेषता आ गई। प्रकृति के फैले हुए जीवन से हमें जीवन मिला प्रकृति हमारी माता बनी उसकी गोद में ही हमें प्रेरणा मिली और हम पले। हमारी सभ्यता और संस्कृति पर प्रकृति की गहरी छाप स्पष्ट दिखाई देती है। प्रकृति माँ से हमने सीखा है कि सत्य की कोई सीमाएँ नहीं समस्त संसार सत्य की सीमा के भीतर है।

समय बीतता चला गया युग पलटते चले गए, इतिहास करवटें लेता चला गया और गंगा का लाखों मन जल बहकर समुद्र के गर्भ में लीन हो गया। उजड़ सावड़ धरती लहलहाते खेत बन गई और दुर्गम वनों ने मैदानों का रूप धार लिया। साम्राज्य बने और बिगड़े सम्राट् आए और समय के भँवर में विलीन हो गए। ऊँचे-ऊँचे प्रासाद बने और रेत के घरौंदों की भाँति बैठ गए, परन्तु राजमहलों में रहने वाले कई-कई अश्वमेध और राज सूय यज्ञ करने वाले महा प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट् भी घास-फूस की कुटियाओं में रहने वाले और वल्कल वस्त्र अथवा मृग चर्म धारण करने वाले, सूखी हड्डियों और तेज से चमकते हुए निर्मल नेत्रों वाले ऋषियों के सामने नतमस्तक होकर उनकी चरण धूलि अपने भाल पर श्रद्धापूर्वक लगाते थे। उनके उपदेशामृत को पीकर अपना और प्रजा का कल्याण करते थे। ऋषियों ने प्रकृति और जीव को एक बिन्दु पर केन्द्रित करके अमरत्व प्राप्त कर लिया था। उनके मतानुसार प्रकृति और जीव एक चित्र के दो पहलू हैं। दोनों ही एक महान् सत्य के अंग हैं। जीव और प्रकृति में तादात्म्य की भावना पक्की करना भारतीय दार्शनिकों का ध्येय रहा है। भारत में महात्मा विवेकी और वीर सभी प्रकार के व्यक्ति हुए हैं बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ महाराज और सम्राट् भी हुए हैं। परन्तु इन सब वर्गों के प्रतिनिधि सर्वत्र ऋषि ही हुए।

"सम्प्राप्यैनं ऋषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मनो वीतरागाः प्रशान्ताः ते
स्वर्गं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मनः सर्वमेवाविशन्ति।'

वह ज्ञानी जिन्हें ज्ञान द्वारा आत्मा की अनुभूति हुई थी और इस प्रकार वह तत्त्व दर्शी बन गए थे। आत्मा में उसकी सम्भावना जानकर अपने अन्तः स्थ "स्व" में जिन्होंने पूर्ण क्षमता स्थिर करली थी। उपनिषदों की शिक्षा का यही रहस्य है कि विश्वात्मा को पाने के लिए सर्वभूतों में आत्मवत् दृष्टि रखो। संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर है इस भावना से ही उपनिषद् आरम्भ होते हैं।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥[1]

इस चलायमान संसार में जो कुछ चलता हुआ है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है, इसलिए त्याग भाव से भोग करो और किसी के भी धन का लालच मत करो। अथवा यह कहकर प्रभु को नमस्कार करना कि मैं उस देवता को प्रणाम करता हूँ जो अग्नि और जल में है जिससे सब चराचर विश्वव्याप्त है जो औषधियों और वनस्पतियों में है।

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वम्भुवनमाविवेश।
यो ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

हमारे दार्शनिकों ने भारत के विशाल चमकते नीलाम्बर के नीचे खड़े होकर समस्त संसार का प्रेमाविभोर हृदय से स्वागत किया। उन्होंने मानव की छाया को प्रकृति में देखा

१—ईशोपनिषद्—१

और मनुष्य को संकीर्ण सीमाओं से ऊँचा उठकर विश्व को आत्म भाव से देखने का अमर संदेश दिया। सारे विश्व से प्रेम करने की इस भावना ने इसलिए उनके मन में जन्म लिया क्योंकि इस महान् देश की संस्कृति ने विशाल प्रकृति की गोद में नेत्र खोले थे। इस महान् देश में जहाँ-जहाँ तत्त्वदर्शी ऋषियों ने आश्रम बनाए, जहाँ-जहाँ प्रकृति ने सौरभ बखेरा जहाँ जहाँ किसी पुण्यात्मा ने जन्म लिया, वहाँ-वहाँ तीर्थ बनते चले गए। भारत के पूर्वजों की महानता का एक प्रमाण उनके तीर्थों से मिलता है जो समस्त भारतवर्ष में सर्वत्र फैले हुए हैं। मनुष्य अपने भोजन वस्त्र की आवश्यकता से भी अधिक अपनी आत्मिक भूख को शान्त करने के लिए तीर्थ यात्रा करता है। तीर्थों पर जाकर उसे आत्मशान्ति का वह धन प्राप्त होता है जिसके सामने सांसारिक धन और राज्यों का कोई मूल्य नहीं।

"अपि प्राज्यम् राज्यम् तृणमिव परित्यज्य सहसा"

एक घास के तिनके की भाँति राज्य का परित्याग करने वाले त्यागी इस देश में अनेकानेक हो गए हैं।

जिस देश में सरस्वती बहती है

आर्य पर्वतों की ऊबड़-खाबड़ धरती को लाँघ कर सप्तसिन्धु को पार करके जब सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे तो आर्यों में जो विद्वान और आत्मदर्शी थे उन्होंने देखा कि यह सरस्वती तट का स्थान रमणीक एवं सुन्दर है घनी छाया वाले फलों से भरे वृक्ष समूह मधुर जल खुले मैदान और शान्त वातावरण। पुष्पों से ढकी धरती ढलते दिन की छाया में सरस्वती तट से टकराकर आता हुआ उनके द्वारा गाया हुआ वेदमन्त्रों का मादक स्वर, ढलते सूर्य का कोमल सुनहला स्वप्निल प्रकाश हरे भरे दूर्वादल पर चरते हुए मृगों की डारें सरस्वती के आस-पास फैले घने वृक्षों की शीतल छाँह में विश्राम लेती उनकी गाएँ भी धरती को अपने स्नेहरस से गीली करने वाले क्षितिज पर मंडराते बादलों के टुकड़े। तपस्वियों के रहने के लिए यह स्थान उपयुक्त है ऐसा सोचकर वह आर्य ऋषि सरस्वती तट पर कुरुक्षेत्र प्रदेश में आश्रम बनाकर सैकड़ों शिष्यों के साथ यहाँ रहने लगे और जीव तथा प्रकृति को एक संगम पर लाने का प्रयत्न होने लगा। वेद-मंत्रों की ध्वनि और यज्ञों की सुगन्ध से सारा वायुमण्डल सुवासित हो उठा। जो आर्य युद्ध कला में प्रवीण थे वे बड़े-बड़े साम्राज्यों की नींव रखने के लिए दक्षिण की ओर बढ़ गए। परन्तु साम्राज्य बनाकर भी आर्य सम्राट इन ऋषियों के चरण कमलों की रज लेने के लिए प्रति वर्ष कुरुक्षेत्र आते रहे इसी प्रकार बहुसंख्या में जनसमुदाय उनके पास उपदेशामृत पान करने आता रहा और धीरे धीरे सरस्वती तट का यह देश पावन पुनीत और संस्कृति तथा सभ्यता का प्रकाश केन्द्र बन गया। विश्व की सद्भावनाओं का मौलिक स्थान होने के कारण इस प्रदेश का आदि नाम सृष्टिनिर्माता ब्रह्मा के नाम पर ब्रह्मावर्त था "तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते"

कुरुक्षेत्र उत्तरी भारत में वैदिक संस्कृति का केन्द्र और सहस्रों वर्ष तक भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक क्षितिज पर उज्ज्वल नक्षत्र रहा है। इस देव भूमि के आँचल में आर्यसभ्यता ने नेत्र खोले पली और परवान चढ़ी। मनुमहाराज ने कहा है कि संसार के समस्त मानव अपने कल्याणार्थ कुरुक्षेत्र के नागरिकों के पद चिन्हों पर चलें।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मन।
स्व स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवा ॥[1]

कुरुक्षेत्र की पवित्रता तथा महानता अनेक कारणों से है। ऋग्वेद शतपथ ब्राह्मण जाबालि उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत्, गीता महाभारत और अन्य धर्मशास्त्रों में इस भूमि को धर्मपरायण कहा है। श्रुति तथा स्मृति अनुसार कुरुक्षेत्र ऋषियों तथा देवताओं का निवास स्थान है। कुरुक्षेत्र की जो प्राचीनता तथा पवित्रता भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न रही है ऐसी अन्य धार्मिक स्थानों की नहीं रही। सृष्टि के रचना काल से ही सर्व अवतारों ऋषियों और मुनियों का सम्बन्ध कुरुक्षेत्र से रहा है। कुरुक्षेत्र में महर्षि व्यास ने पुराणों श्रीमद्भागवत् तथा महाभारत की रचना की और ऋषि पाणिनी ने अष्टाध्यायी लिखी। कुरुक्षेत्र के नेत्रों ने कितनी ही क्रान्तियाँ और कितने ही परिवर्तन देखे हैं। कुरुक्षेत्र के कानों ने ऋषियों का वेदपाठ भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से गीतामृत और भीष्म पितामह के अन्तिम उपदेश जो उनके ज्ञान और अनुभव का निचोड़ है, का पान किया है। महारथी द्रोणाचार्य अर्जुन और कर्ण सरीखे योद्धाओं के धनुष की टंकार और गर्जना सुनी है। इसने सम्राट कुरु को हल चलाते अभिमन्यु को चक्रव्यूह तोड़ते निहारा और बाण भट्ट जैसे अमर कवियों की गौरव गाथा सुनी। कुरुक्षेत्र की छाती पर महाभारत युद्ध हुआ और इसकी गोद में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना सोई। यहाँ का आकाश महाराज प्रभाकर वर्धन के शस्त्रों के घुंघरुओं से झंकारा हुआ और सम्राट हर्ष के जय घोषों से गूंजा। बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जिन्होंने भारतीय इतिहास का मार्ग बदल डाला यहीं पर लड़ी गई। यह वह प्रदेश है जहाँ भारतवर्ष की सभ्यता का पतन हुआ। हूणों कुषाणों और मुसलमानों की तीव्र तलवारों के घाव आज भी इसके जर्जर शरीर पर बने हैं। जहाँ इस पुनीत भूमि पर महात्मा बुद्ध जगत् गुरु शंकराचार्य और चाणक्य के पद सरोज पड़े वहाँ दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की पराजय भी हुई। तैमूर से लेकर अहमदशाह अबदाली तक के सब आक्रमणकारियों ने रक्त से सनी तलवारें इसके पवित्र तीर्थों के जल में धोई। दस में से छः सिख गुरु इस सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्थान पर पधारे। करोड़ों धर्मनिष्ठ हिन्दू नित्य "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे" के शब्दों से गीता पाठ प्रारम्भ करते हैं। कुरुक्षेत्र का नाम मात्र ही एक सच्चे धर्मनिष्ठ के हृदय में श्रद्धा, प्रेम तथा,गौरव का संचार कर देता है। इसी पुण्य स्थल पर देवासुर संग्राम के समय मानव कल्याणार्थ महर्षि दधीचि ने अपनी अस्थियाँ तक दान कर दीं। कुरुक्षेत्र ने मानव समाज को संकीर्ण सीमाओं से ऊँचा उठाकर विश्व में भ्रातृभाव का अमर सन्देश दिया।

आर्यागमन से पूर्व सरस्वती तट के इस प्रदेश पर आदिवासियों की बस्तियाँ थीं।

१—मनुस्मृति अ० २ श्लोक २०।

आर्यों का इस प्रदेश पर छा जाना शान्तिपूर्वक नहीं हुआ। आर्यों और मूल निवासियों के संघर्ष का परिचय ऋग्वेद में देवों और असुरों के युद्ध की प्रतिध्वनि के रूप में मिलता है। इन आदि वासियों को आर्य द्राविड़ किरात कृष्ण काले असुर, पणि, दास और दस्यु कहते थे। यह लोग गेहूं जौ, धान, तिल और मटर की खेती करते थे। दासों के राजा वृत्र शम्बर, शुष्ण पिप्रु, नमुचि, कुयव, वर्चिन और धुनि थे[1]। आर्यों की जो जातियां सर्व प्रथम यहाँ आई उन्हें पाँचजन कहते हैं वह थे पुरु यदु, तुर्वश अनु और द्रुह्यु[2]। वाम देव ने युद्ध में ५० हजार कृष्णों (काले असुरों) के मारे जाने का उल्लेख किया है[3]। आदि वासी आर्यों से संघर्ष के पश्चात पूर्व और दक्षिण में भाग गए, जो रह गए उन्हें विजेताओं ने दस्यु या दास या कमकर बना लिया। आर्य राजा दिवोदास ने ऋषि भरद्वाज की सहायता से दस्यु राजा शम्बर के साथ ४० वर्षों तक युद्ध किया और विजयी हुआ। दिवोदास तृत्सुओं का राजा था उसने आर्यवंशी पुरुओं और तुर्वसों के साथ भी युद्ध किया। उस समय जब पहले से निवास करने वाले आर्यों के साथ आर्यों का संघर्ष चल रहा था जिसे कि इतिहासकार कलहकाल कहते हैं, आर्यावर्त में जिसका नाम अभी कुरुक्षेत्र नहीं हुआ था, पवित्र पावनी सरस्वती के किनारे भरत नाम की आर्य जाति का प्रवेश था। भरतों की प्रतापी जाति के राजा विश्वरथ ने देवों की कृपा से ऋषि पद प्राप्त करके विश्वामित्र नाम धारण किया। ऋषि विश्वामित्र ने राज पद छोड़कर सरस्वती के तीर पर आश्रम स्थापित किया जहाँ धीरे-धीरे सम्पूर्ण आर्यावर्त की विद्या, तप और शौर्य केन्द्रीभूत हो गए। राज पुत्र धनुर्विद्या और मन्त्रविद्या सीखते थे और इस आश्रम में आर्य तथा दस्यु राजा वैर भूलकर एकत्र हुआ करते थे। ऋषि विश्वामित्र के सामने भृगुओं में श्रेष्ठ ऋषि जमदग्नि ने भी यहाँ आश्रम स्थापित किया। ऋषि जमदग्नि यदु और द्रुह्यु जाति के पुरोहित थे। देवाधिदेव वरुण के ऋत का सर्वत्र दर्शन करने वाले भरत श्रेष्ठ विश्वामित्र ऋषि ने ऋषि जमदग्नि के साहचर्य में रहकर अनेक मन्त्रों के दर्शन किए और उन्होंने अपनी प्रेरणा से ही भरत तृत्सु और भृगुओं की सेनाओं को अपूर्व विजय प्राप्त करवाई। विश्वामित्र के ऋषि होने के पश्चात जब सूर्य देवता सत्रह बार मकर राशि में संक्रांति कर चुके तब राजा दिवोदास यमलोक सिधारे।

सुदास

एक प्रतापी राजा के पश्चात उसका पुत्र उससे भी अधिक प्रतापी हो ऐसा इतिहास में कम देखा गया है। दिवोदास के पश्चात सुदास उसका उत्तराधिकारी हुआ। सुदास न केवल योद्धा था वरन् वह विद्वान भी था और उसने बहुत से मंत्रों की सृष्टि भी की। वीरों में अग्रगण्य राजा सुदास ने तृत्सुओं के प्रतापी सिंहासन पर आसीन होते ही ऋषि विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाया। ऋषि विश्वामित्र ने सुदास को भी विजय प्राप्त

(१) ऋग्वेद १।१०३।८, (२) ऋग्वेद १।१०८।८, (३) ऋग्वेद ४।१६।१३

करवाई। उन्होंने भरत और तृत्सुओं का बल बढ़ाया। इसी काल में विश्वामित्र और वशिष्ठ में दो विचारधाराओं की टक्कर हुई ऋषि विश्वामित्र आर्य और दस्यु के भेद को दूर करने के लिए प्रयत्नशील थे और ऋषि वशिष्ठ आर्यों की सनातन शुद्धि और निष्ठा के प्रतिनिधि थे। इस समस्या को लेकर सरस्वती तट के इस प्रदेश में लम्बा संघर्ष चला। सुदास ने इस संघर्ष में ऋषि वशिष्ठ के मत को ग्रहण किया और जब ऋषि विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र का यज्ञ करवाने के लिए गए तो उसने वशिष्ठ को अपना पुरोहित बनाकर दस्यु राजा भेद के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। द्वापर युग के आरम्भ में ही आर्यावर्ती राज्य शक्तियों की सत्ताएं डांवाडोल होने लगी थीं। किसी प्रदेश पर वहां के राजा का आधिपत्य उसके वंश की मर्यादा पर न निर्भर कर पूर्णतया उसके अपने सामर्थ्य पर ही निर्भर करता था। इसलिए किसी सामर्थ्यवान व्यक्ति के लिए इस काल में अपना राज्य विस्तार कर लेना अपेक्षाकृत आसान हो गया था। इस सुयोग का भी समुचित लाभ सरस्वती तट के राजा सृञ्जय के पौत्र और दिवोदास के पुत्र सुदास ने उठाया। सुदास ने आक्रमण करके कौशल की सीमा तक के प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। हस्तिनापुर के पौरव राज्य पर भी उसने आक्रमण किया। उस समय वहां का राजा संवरण था। सुदास ने दस अक्षौहिणी सेना लेकर हस्तिनापुर पर आक्रमण किया था[1]। संवरण को हस्तिनापुर छोड़कर भाग जाना पड़ा। सुदास ने उसे यमुना के किनारे दोबारा परास्त किया। तब संवरण सिन्धु नदी की ओर भाग गया। संवरण पुरु जाति का राजा था। पुरुओं का वर्णन भी ऋग्वेद में द्रुह्युओं, तुर्वसों और यादवों के साथ आया है। पुरुओं का तृत्सु और भरत वर्गों के साथ निकट का सम्बन्ध था। यह भी सरस्वती तट पर रहते थे[2]। सारे आर्यावर्त में युद्ध छिड़ गया। एक ओर वशिष्ठ द्वारा प्रेरित सुदास और दूसरी ओर विश्वामित्र द्वारा प्रेरित दस राजाओं में परस्पर युद्ध छिड़ जाता है जिसे दशराज्ञ युद्ध कहा जाता है। दस राजाओं के गुट के अधिकांश राजा आधुनिक उत्तर प्रदेश पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेश के तत्कालीन शासक थे। सुदास ने इन सब राजाओं को परुष्णी (रावी) नदी के तट पर करारी हार दी। इस विजय से सुदास समृद्धि के शिखर पर पहुंच गया और समस्त आर्यावर्त में ऋषि वशिष्ठ का जयजयकार होने लगा।

सुदास के पश्चात उसके उत्तराधिकारी उसका पुत्र सहदेव और उसका पौत्र सोमक थे। सुदास द्वापर के प्रथम चरण में हुआ है। इसलिए उसका काल ईसा से पूर्व चौबीसवीं शताब्दी होना जान पड़ता है।

आर्यावर्त के इतिहास में रामायण काल के पश्चात् भी दो शताब्दियाँ राष्ट्र के सामने बड़ी विकट समस्याएँ ले आने वाली थीं। उस काल में राष्ट्रीय जीवन के विकास की गति बनाए रखने के लिए कई प्रकार के महान् कार्य पूरे करने की आवश्यकता थी। इसके लिए उस युग में सरस्वती तट कुरुक्षेत्र में वास करने वाला भरत वंश ही सबसे आगे आया। राष्ट्र के महान् संकट के समय भरत वंश ने सच्चे पथ प्रदर्शक का कार्य किया था। इसलिए

१—महाभारत आदि पर्व ९४। २—ऋ० सं० पुस्तक।

भरतों की कीर्ति भी महान् बन गई। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि भरत वंश जैसी महानता न तो पहले के और न ही उनके पश्चात् के ही लोगों ने प्राप्त की है[१]।

ब्रह्मावर्त से कुरुक्षेत्र

अब तक सरस्वती तट का यह प्रदेश जहाँ भारतवंश का राज्य था ब्रह्मावर्त कहलाता था[२]। परन्तु ब्रह्मावर्त का नाम पश्चात् में कुरुक्षेत्र कैसे हुआ? इसकी कथा वामन पुराण और महाभारत में विभिन्न प्रकार से आती है। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है कि सुदासने पुरुओं के राजा संवरण को पराजित किया था और वह सिन्धु की ओर भाग गया था। कुछ समय के पश्चात् राजा संवरण ने अपने खोए हुए राज्य को दोबारा प्राप्त किया। राजा संवरण की रानी तपती के गर्भ से राजा कुरु का जन्म हुआ। कुरु ने पुरुओं के नाम को बहुत उज्ज्वल किया। वह इतना तेजस्वी था कि उसके पश्चात् उसके पुरु वंश का नाम कौरव पड़ गया। इसी कौरव वंश में आगे चलकर कौरव और पाण्डव हुए। उस समय तृत्सुओं से पुरुओं का नाम इस देश में अधिक बढ़ा। पुरुओं के राजा सर्वदमन ने जिसका नाम भरत भी था सरस्वती तट पर यज्ञ किए थे और अपने राज्य को सरस्वती से गंगा तट तक विस्तृत कर लिया था। महाभारत युद्ध से पूर्व और उसके पश्चात् पुरु वंश के राजा ही इस देश पर राज्य करते रहे। जब राजा कुरु वृद्ध हुए तो उनके मन में विचार आया कि इस नश्वर संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु कीर्ति है क्योंकि शास्त्रकारों ने कहा है कि "कीर्तिर्यस्य स जीवति" जिसकी संसार में यशगाथा होती है वह ही जीवित है। यह सोच कर राजा कुरु ने समस्त पृथ्वी का भ्रमण किया। उसके मन में केवल एक ही लग्न थी कि वह किस प्रकार कीर्ति प्राप्त करे। भ्रमण करते-करते उसने द्वैत वन में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उसके दुःखित हृदय को शान्ति मिली। उसने देखा कि पुण्य सलिला पापमोचनी हरिजिह्वा ब्रह्म पुत्री सरस्वती अपने प्रवाह से पापों का नाश करती हुई पुण्य संचय कर रही है। उसके पुनीत तट पर करोड़ों पुण्य तीर्थ बने हैं। राजा कुरु ने सरस्वती में स्नान करके ईश्वरोपासना की। यह वह स्थान था जहाँ सृष्टि रचना के निमित्त ब्रह्मा ने उत्तर वेदी में तपस्या की थी और जिसे समन्त पञ्चक भी कहते हैं। इस वेदी का विस्तार चारों दिशाओं में पाँच-पाँच कोस था। महाराज कुरु ने निश्चय किया कि मैं इस पुण्य स्थल पर अपनी अभिलाषा पूरी कर सकता हूँ कीर्ति प्राप्त करने के लिए ऐसा योग्य स्थान और नहीं मिलेगा। राजा कुरु महादेव का वृषभ तथा धर्मराज का पौंड्रक महिषा हल में जोत कर पृथ्वी को जोतने लगा। राजा कुरु का यह सुकार्य देख कर देवराज इन्द्र ने उससे पूछा कि "राजन् यहाँ पर क्या जोत रहे हो?" कुरु ने उत्तर दिया कि 'तप सत्य क्षमा दया

१—शतपथ ब्राह्मण १३-५ ४। २ महाभारत शल्य पर्व अध्याय ५१ श्लोक १ भारतीय पुरातत्वीय कुरुक्षेत्र महात्म्य श्लोक ६, मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७, श्रीमद्भागवत स्कन्ध, ४ अध्याय १६ श्लोक १।

धीज दान योग और ब्रह्मचर्य बोत रहा हूँ। इन्द्र ने पुनः पूछा कि 'हे राजन् ! यह बीज कहाँ से आया ?' । राजा कुरु ने कहा 'अष्टांग योग संज्ञक नामक बीज ग्रहण किया है।' इन्द्र के चले जाने के पश्चात् राजा कुरु प्रतिदिन सात-सात कोस हल चलाने लगे। उसका कर्म देखकर भगवान् विष्णु वहाँ आए और राजा कुरु से पूछा कि "हे राजन् ! यह क्या करता है ? तब राजा कुरु ने अष्टांग महाधर्म प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि का वर्णन किया। भगवान् ने पूछा कि नृप वह बीज कहाँ है ? राजा कुरु ने उत्तर दिया कि वह बीज मेरे शरीर में स्थित है। भगवान् ने कहा 'राजन् बीज दो हमें तो हम बोयेंगे और आप हल चलाओ। राजा कुरु ने अपनी दक्षिण भुजा पसार दी। भगवान् ने अपने चक्र के वेग से उस भुजा के सहस्र टुकड़े कर दिए। पुनः राजा ने बाम भुजा पसार दी। भगवान् ने चक्र द्वारा वह भी टुकड़े-टुकड़े कर दी। क्रमशः राजा कुरु के जंघाएं अर्पित करने पर, भगवान् ने उन्हें भी काट दिया। अन्त में जब राजा ने अपना सिर भी अर्पण कर दिया तो भगवान् विष्णु ने उसके मन को स्थिर और बुद्धि को निर्विकार देखकर, अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा कुरु को वर मांगने के लिए कहा। राजा कुरु ने प्रार्थना की कि—

यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु वः।
स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह॥
उपवासश्च दानं च स्नानं जाप्यं च माधव।
होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो॥
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शङ्खचक्रगदाधर।
अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम्॥
तथा भवान् सुरैः सार्द्धं समं देवेन शूलिना।
वसाम पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत॥[1]

हे माधव ! जितनी दूर तक इस क्षेत्र में मैंने हल चलाया है उतनी दूर तक यह धर्मक्षेत्र हो जाए। यहाँ स्नान करने वालों को महापुण्य फल मिले। आपकी कृपा से यहाँ उपवास व्रत दान, जप स्नान होम और यज्ञ जैसे शुभ कार्य और अशुभ कर्म भी अक्षय हों। हे पुण्डरीकाक्ष ! आप सर्व देवताओं सहित इस स्थान में निवास करें। भगवान् ने उत्तर दिया कि हे कुरु ! ऐसा ही होगा। अतः राजा कुरु की तपस्या के पश्चात् यह प्रदेश ब्रह्मावर्त के स्थान पर कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दो और दृष्टिकोण

वामन पुराण की इस कथा में अलंकारों का प्रयोग जैसा कि प्राचीन धार्मिक साहित्य कारों की शैली रही है अधिक है। ऊपर की कथा को समझने का यह भी ढंग हो सकता

१—वामन पुराण अध्याय २२ श्लोक ३३ से ३७ तक।

है कि महाराज कुरु ने सरस्वती तट पर घोर तपस्या की। तपस्या के समय जब भगवान् ने कुरु से पूछा कि यह तपस्या क्यों कर रहे हो? तो कुरु ने उत्तर दिया कि योग के आठ धर्मों पर जय पाने के लिए। भगवान् ने जब यह पूछा कि वह कहाँ है? कुरु ने उत्तर दिया कि मेरे शरीर में और उसने विकट तपस्या करके अपनी दाहिनी, बाईं भुजाएँ और बायाएँ भुजा दी। अन्त में महाराज कुरु ने सिर देकर मोक्ष प्राप्त किया। क्योंकि कुरु ने इसी क्षेत्र में तपस्या की थी इसलिए उसके नाम पर इस प्रदेश का नाम कुरुक्षेत्र हो गया।

एक बात और भी हो सकती है कि महाभारत और पुराणों के अनुसार कुरु बड़े प्रतापी तथा तपस्वी राजा थे। उन्होंने अपने तप से कुरुक्षेत्र को पवित्र बनाया, दूसरे शब्दों में उन्होंने ही सर्व प्रथम कुरुक्षेत्र प्रदेश को कृषि योग्य बनाया था। पहले यहाँ भारी जंगल था। कुरु राजा ने हल चलाकर इसे अन्न पैदा करने योग्य बनाया और इसीलिए इस प्रदेश का नाम ब्रह्मावर्त से कुरुक्षेत्र कहलाया जाने लगा। भौगोलिक दृष्टि से भी कुरुक्षेत्र आर्यावर्त का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग है। यहाँ पर ही हमारे देश के अनेक भाग्य निर्णायक युद्ध लड़े गए। पश्चिम में सिन्धु प्रणाली पूर्व में गंगा प्रणाली तथा दक्षिण पथ इन तीनों का संगम कुरुक्षेत्र में ही होता है। कुरु द्वारा इस क्षेत्र के कृषि योग्य बना दिए जाने पर हमारे देश के एक किनारे से दूसरे छोर के बीच का यातायात मार्ग बहुत सुविधाजनक हो गया। अब यह मार्ग केवल थोड़े से साहसी लोगों के ही नहीं बल्कि जन साधारण के लिए भी सुगम बन गए। इससे आर्यावर्त के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न प्रकृति वाले लोगों का एकत्रित हो पाना सुगम हो गया। यही आर्यावर्त के जन समूह के एकीकरण तथा उस समूह के उत्कर्ष की ओर अग्रसर होने की बुनियाद बनी। राजा कुरु का यह महान् कार्य एक ऐसे काल में हुआ जब इसकी हमारे देश की उन्नति के लिए नितान्त आवश्यकता थी। उनके इस कार्य में हम पराक्रम तथा तपस्या का वास्तव में ही अद्भुत ढंग का समावेश हो गया देखते हैं। उस तपस्या तथा पराक्रम के ही परिणाम स्वरूप सरस्वती से पश्चिम से लेकर पांचाल तथा प्रयाग के परे तक के केवल प्रदेश ही एक आँचल में नहीं आगए, बल्कि उन सुदूर सीमाओं के निवासी अपनी आपस की गहरी एकता अनुभव करने लग गए। कुरु ने जो महान् कार्य आरम्भ किया, उसके परिणाम हमें अपरिमित की दिशा में बहुत दूर तक खींच ले जाने वाले हुए। इसी कारण इस सरस्वती और दृषद्वती के बीच के देश का नाम कुरुक्षेत्र हुआ। महाभारत में दिए गए श्लोकों से ऊपर की बात और स्पष्ट हो जाती है जहाँ इस प्रदेश को कुरुक्षेत्र न कहकर कुरुजाङ्गल प्रदेश कहा गया है।

> आजमीढो महायशैर्बहुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
> ततः संवरणात् सौरी तपती सुषुवे कुरुम् ॥
> राजत्वे तं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे ।
> तस्य नाम्नाभिविख्यातं पृथिव्यां कुरुजाङ्गलम् ॥

बीज, दान, योग और ब्रह्मचर्य बो रहा हूँ।" इन्द्र ने पुनः पूछा कि "हे राजन्! यह बीज कहाँ से आया?"। राजा कुरु ने कहा, "अष्टांग योग संज्ञक नामक बीज ग्रहण किया है।" इन्द्र के चले जाने के पश्चात् राजा कुरु प्रतिदिन सात-सात कोस हल चलाने लगे। उनका कर्म देखकर भगवान् विष्णु वहाँ आए और राजा कुरु से पूछा कि "हे राजन्! यह क्या करता है?" तब राजा कुरु ने अष्टांग महायम प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया। भगवान् ने पूछा कि नृप यह बीज कहाँ है? राजा कुरु ने उत्तर दिया कि यह बीज मेरे शरीर में स्थित है। भगवान् ने कहा "राजन् बीज तो हमें दो हम बोयेंगे और आप हल चलाओ।" राजा कुरु ने अपनी दक्षिण भुजा पसार दी। भगवान् ने अपने चक्र के वेग से उस भुजा के सहस्र टुकड़े कर दिए। पुनः राजा ने वाम भुजा पसार दी। भगवान् ने चक्र द्वारा वह भी टुकड़े-टुकड़े कर दी। क्रमशः राजा कुरु के अवयव आगे करने पर, भगवान् ने उन्हें भी काट दिया। अन्त में जब राजा ने अपना सिर भी अर्पण कर दिया तो भगवान् विष्णु ने उसके मन को स्थिर और बुद्धि को निर्विकार देखकर, अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा कुरु को वर माँगने के लिए कहा। राजा कुरु ने प्रार्थना की कि—

> यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु वः।
> स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह॥
> उपवासश्च दानं च स्नानं जाप्यं च माधव।
> होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाऽप्यशुभं विभो॥
> त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शंखचक्रगदाधर।
> अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम्॥
> तथा भवान् सुरैः सार्द्धं समं देवेन शूलिना।
> वसात्र पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत॥[1]

हे माधव! जितनी दूर तक इस क्षेत्र में मैंने हल चलाया है उतनी दूर तक यह धर्मक्षेत्र हो जाए। यहाँ स्नान करने वालों को महापुण्य फल मिले। आपकी कृपा से यहाँ उपवास व्रत दान जप स्नान होम और यज्ञ जैसे शुभ कार्य और अशुभ कर्म भी अक्षय हों। हे पुण्डरीकाक्ष! आप सर्व देवताओं सहित इस स्थान में निवास करें। भगवान् ने उत्तर दिया कि हे कुरु! ऐसा ही होगा। अतः राजा कुरु की तपस्या के पश्चात् यह प्रदेश ब्रह्मावर्त के स्थान पर कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दो और दृष्टिकोण

वामन पुराण की इस कथा में अलंकारों का प्रयोग जैसा कि प्राचीन धार्मिक साहित्यकारों की शैली रही है अधिक है। ऊपर की कथा को समझने का यह भी ढंग हो सकता

१—वामन पुराण, अध्याय २२ श्लोक ३३ से ३७ तक।

है कि महाराज कुरु ने सरस्वती तट पर घोर तपस्या की। तपस्या के समय जब भगवान् ने कुरु से पूछा कि यह तपस्या क्यों कर रहे हो ? तो कुरु ने उत्तर दिया कि योग के आठ अंगों पर जय पाने के लिए। भगवान् ने जब यह पूछा कि वह कहाँ है ? कुरु ने उत्तर दिया कि मेरे शरीर में और उसने विकट तपस्या करके अपनी दाहिनी, बाईं भुजाएँ और जंघाएँ भुजा दी। अन्त में महाराज कुरु ने सिर देकर मोक्ष प्राप्त किया। क्योंकि कुरु ने इसी क्षेत्र में तपस्या की थी इसलिए उसके नाम पर इस प्रदेश का नाम कुरुक्षेत्र हो गया।

एक बात और भी हो सकती है कि महाभारत और पुराणों के अनुसार कुरु बड़े प्रतापी तथा तपस्वी राजा थे। उन्होंने अपने तप से कुरुक्षेत्र को पवित्र बनाया, दूसरे शब्दों में उन्होंने ही सर्व प्रथम कुरुक्षेत्र प्रदेश को कृषि योग्य बनाया था। पहले यहाँ भारी जंगल था। कुरु राजा ने इस बसाकर इसे अन्न पैदा करने योग्य बनाया और इसीलिए इस प्रदेश का नाम ब्रह्मावर्त से कुरुक्षेत्र कहलाया जाने लगा। भौगोलिक दृष्टि से भी कुरुक्षेत्र आर्यावर्त का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग है। यहाँ पर ही हमारे देश के अनेक भाग्य निर्णायक युद्ध लड़े गए। पश्चिम में सिन्धु प्रणाली पूर्व में गंगा प्रणाली तथा दक्षिण पथ इन तीनों का संगम कुरुक्षेत्र में ही होता है। कुरु द्वारा इस क्षेत्र के कृषि योग्य बना दिए जाने पर हमारे देश के एक किनारे से दूसरे छोर के बीच का यातायात मार्ग बहुत सुविधाजनक हो गया। अब यह मार्ग केवल थोड़े से साहसी लोगों के ही नहीं बल्कि जन साधारण के लिए भी सुगम बन गए। इससे आर्यावर्त के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न प्रकृति वाले लोगों का एकत्रित हो पाना सुगम हो गया। यही आर्यावर्त के जन समूह के एकीकरण तथा उस समूह के उत्कर्ष की ओर अग्रसर होने की बुनियाद बनी। राजा कुरु का यह महान् कार्य एक ऐसे काल में हुआ जब इसकी हमारे देश की उन्नति के लिए नितान्त आवश्यकता थी। उनके इस कार्य में हम पराक्रम तथा तपस्या का वास्तव में ही अद्भुत ढंग का समावेश हो गया देखते हैं। उस तपस्या तथा पराक्रम के ही परिणाम स्वरूप सरस्वती से पश्चिम से लेकर पांचाल तथा प्रयाग के परे तक के केवल प्रदेश ही एक आँचल में नहीं आ गए, बल्कि उन सुदूर सीमाओं के निवासी अपनी आपस की गहरी एकता अनुभव करने लग गए। कुरु ने जो महान् कार्य आरम्भ किया उसके परिणाम हमें प्रगति की दिशा में बहुत दूर तक खींच ले जाने वाले हुए। इसी कारण इस सरस्वती और दृषद्वती के बीच के देश का नाम कुरुक्षेत्र हुआ। महाभारत में दिए गए श्लोकों से ऊपर की बात और स्पष्ट हो जाती है जहाँ इस प्रदेश को कुरुक्षेत्र न कहकर कुरुजाङ्गल प्रदेश कहा गया है।

आजमीढो महायज्ञैर्बहुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
ततः संवरणात् सौरी तपती सुषुवे कुरुम् ॥
राजत्वे तं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे ।
तस्य नाम्नाभिविख्यातं पृथिव्यां कुरुजाङ्गलम् ॥

कुरुक्षेत्रं स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः ।
अश्ववक्त्रमभिष्यन्तं तथा चैत्ररथं मुनिम् ।[1]

इसके अनन्तर भगवान् सूर्यदेव की कन्या तपती ने राजा संवरण के वीर्य से राजा कुरु को उत्पन्न किया । हे राजन् ! कुरु को धर्मज्ञ समझकर सब उनका आश्रय लेते थे इन्हीं के नाम से पृथ्वी में कुरुजाङ्गल देश प्रसिद्ध हुआ और इसी महा तपस्वी राजा ने अपनी कठोर तपस्या से कुरुक्षेत्र को पुण्य व पुनीत बनाया ।

महाराजा कुरु ने पुरुओं के नाम को बहुत उज्ज्वल किया वह इतना तेजस्वी था कि उसके पश्चात् उसके वंश का नाम कौरव पड़ गया इसी कौरव वंश में आगे चलकर कौरव और पाण्डव हुए ।

समन्तक पंचक और परशुराम

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥
स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रौधिरान् ह्रदान् ॥
स तेषु रुधिराम्भःसु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः ।
पितॄन् सन्तर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥
अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो राममब्रुवन् ।
राम राम महाभाग प्रीताः स्म तव भार्गव ॥
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण तव प्रभो ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यमिच्छसि महाद्युते ॥
एवमुक्तस्तु पितृभी रामः प्रवदतां वरः ।[2]

त्रेता और द्वापर के संधिकाल में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्री जमदग्न्य राम ने अपने पिता ऋषि जमदग्नि के वध होने पर क्रोध में आकर पृथ्वी वासी क्षत्रियों का बार-बार संहार किया और पाँच तालाब उनके रक्त से भरकर उसी रक्त से अपने पितरों का तर्पण किया । ऐसा हमने परम्परा से सुना है । तर्पण के समय भृगु ऋचीक और जमदग्नि आदि उनके पितरों ने राम के पास आकर कहा । हे राम महाभाग्य हम तुम से प्रसन्न हैं और तुम्हारी पितृ भक्ति से संतुष्ट हैं तुम वर माँगो परशुराम जी ने उत्तर दिया—

यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि ।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ॥

---

(१) महाभारत अ० १ अ० ९४ श्लोक ४८ से ५० । (२) महाभारत आदि पर्व अ० २ श्लोक ३ से ७ ।

> यतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः ।
> ह्रदाश्च तीर्थं भूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥
> एवं भविष्यतीत्येव पितरस्तमथाब्रुवन् ।
> तं क्षमस्वेति निषिध्य पितृस्तस्तु स विरराम ह ॥
> तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम् ।
> समन्तपञ्चक मिति पुण्यं तत् परिकीर्तितम् ॥
> येन लिङ्गेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते ।
> तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः ॥[1]

यदि मेरे पितृगण मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दें कि क्रोधवश मैंने जो क्षत्रियों का संहार किया है इस पाप से मैं मुक्त हो जाऊँ और इन पांच तालाबों में स्नान दान पूजनादि से प्राणियों के समस्त पाप नष्ट हों। पितरों ने कहा ऐसा ही हो।" कुरुक्षेत्र के उन्हीं रुधिर पूर्ण पांच तीर्थों को समन्त पंचक कहते हैं।

पुरुओं के राजा दुष्यन्त के प्रतापी पुत्र सर्वदमन ने सरस्वती तट पर यज्ञ किए। सर्वदमन बहुत बड़ा विजेता और सम्राट था जिसको भरत भी कहा जाता है। सर्वदमन भरत ने अपने राज्य को सरस्वती और गंगा के मध्यवर्ती प्रदेश में स्थापित किया था ।

कुरुक्षेत्रं स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः ।
अत्रैव तमभिध्यन्त तथा चैत्ररथं मुनिम् ।[१]

इसके अनन्तर भगवान् सूर्यदेव की कन्या तपती ने राजा संवरण के वीर्य से राजा कुरु को उत्पन्न किया । हे राजन् ! कुरु को धर्मज्ञ समझकर सब उनका आश्रय लेते थे, उन्हीं के नाम से पृथ्वी में कुरुजाङ्गल देश प्रसिद्ध हुआ और इसी महा तपस्वी राजा ने अपनी कठोर तपस्या से कुरुक्षेत्र को पुण्य व पुनीत बनाया ।

महाराजा कुरु ने पुरुओं के नाम को बहुत उज्ज्वल किया वह इतना तेजस्वी था कि उसके पश्चात् उसके वंश का नाम कौरव पड़ गया इसी कौरव वंश में आगे चलकर कौरव और पाण्डव हुए ।

समन्तक पंचक और परशुराम

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥
स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रौधिरान् ह्रदान् ॥
स तेषु रुधिराम्भःसु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः ।
पितॄन् सन्तर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥
अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो राममब्रुवन् ।
राम राम महाभाग प्रीताः स्म तव भार्गव ॥
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण तव प्रभो ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यमिच्छसि महाद्युते ॥
एवमुक्तस्तु पितृभी रामः प्रहरतां वरः ।[२]

त्रेता और द्वापर के संधिकाल में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्री जमदग्न्य राम ने अपने पिता महर्षि जमदग्नि के वध होने पर क्रोध में आकर पृथ्वी वासी क्षत्रियों का बार-बार संहार किया और पाँच तालाब उनके रक्त से भरकर उसी रक्त से अपने पितरों का तर्पण किया । ऐसा हमने परम्परा से सुना है । तर्पण के समय भृगु ऋचीक और जमदग्नि आदि उनके पितरों ने राम के पास आकर कहा । हे राम महाभाग्य हम तुम से प्रसन्न हैं और तुम्हारी पितृ भक्ति से संतुष्ट हैं तुम वर माँगो परशुराम जी ने उत्तर दिया—

यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि ।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ॥

---

(१) महाभारत व० प० अ० ८४ श्लोक ७८ से ९ । (२) महाभारत आदि पर्व अ० २ श्लोक १ से ७ ।

अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः ।
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥
एवं भविष्यतीत्येव पितरस्तमथाब्रुवन् ।
तं क्षमस्वेति निषिषिधुस्ततः स विरराम ह ॥
तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम् ।
समन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत् परिकीर्तितम् ॥
येन लिङ्गेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते ।
तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः ॥[1]

यदि मेरे पितृगण मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दें कि क्रोधवश मैंने जो क्षत्रियों का संहार किया है इस पाप से मैं मुक्त हो जाऊँ और इन पाँच तालाबों में स्नान, दान, पूजनादि से प्राणियों के समस्त पाप नष्ट हों। पितरों ने कहा, ऐसा ही हो।" कुरुक्षेत्र के उन्हीं रुधिर पूर्ण पाँच तीर्थों को समन्त पंचक कहते हैं।

पुरुओं के राजा दुष्यन्त के प्रतापी पुत्र सर्वदमन ने सरस्वती तट पर यज्ञ किए। सर्वदमन बहुत बड़ा विजेता और सम्राट था जिसको भरत भी कहा जाता है। सर्वदमन भरत ने अपने राज्य को सरस्वती और गंगा के मध्यवर्ती प्रदेश में स्थापित किया था ।

कुरुक्षेत्र में प्रसिद्ध वन और नदियाँ

वामन पुराण के अनुसार कुरुक्षेत्र प्रदेश में सात वन और नौ नदियों का वर्णन है—

ऋषय ऊचुः ॥ वनानि सप्त नो ब्रूहि सप्त नद्यश्च काः ।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा ॥

लोमहर्षण उवाच— शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः ।
येषां नामानि पुण्यानि सर्व पाप हराणि च ॥
काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदिति वनं महत् ।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकी वन मेव च ॥
तथा सूर्य वन स्थानं तथा मधुवनं महत् ।
पुण्यशीत वन नाम सर्व कल्मष नाशनम् ॥
वनान्ये तानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः ।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥
आपगा च महा पुण्या गंगा मन्दाकिनी नदी ।
मधुस्रवा अम्बु नदी कौशिकी पाप नाशिनी ॥
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी ।
वर्षाकाल वहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥
एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्तितम् ।
रजस्वलात्वमेतासां विद्यते न कदाचन ॥
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः ॥[1]

सात वन यह हैं। (१) काम्यक वन (२) अदिति वन, (३) व्यास वन (४) फलकी वन (५) सूर्य वन (६) मधुवन, (७) शीत वन।

नौ नदियाँ यह हैं। (१) सरस्वती (२) वैतरणी (३) आपगा (४) मन्दाकिनी (५) मधुस्रवा (६) अंशुमती (७) कौशिकी (८) दृषद्वती (९) हिरण्वती। इन नौ नदियों में केवल सरस्वती वर्षभर बहती है। शेष आठ नदियाँ वर्षाकाल में बहने वाली हैं।

---

(१) वामन पुराण अ० ३४ श्लोक १ से ९।

सरस्वती नदी

ऋग्वेद के अनुसार सरस्वती वर्षभर तीव्रगति से बहने वाली नदी थी। ऋग्वेद के अनेकानेक स्थानों में सरस्वती का स्पष्ट उल्लेख है। इसके तट पर कितने ही यज्ञ और युद्ध हुए थे। अनेक मंत्रों में सरस्वती की बड़ी ही दिव्य स्तुति की गई है। ऋग्वेद के २।४१।१६ में सरस्वती को मातृतमा नदियों और देवताओं में श्रेष्ठ कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि आर्यों की दृष्टि में गंगा से भी बढ़कर सरस्वती नदी थी। तैत्तिरीय-संहिता ७।२।१।४ मघव संहिता १।१०।११ तैत्तिरीय ब्राह्मण २।४।८।७, मन्त्र ब्राह्मण २।१।१६
ताण्ड्य महा ब्राह्मण २५।१०।११ और १६ जैमिनीय ब्राह्मण २।२९७ और ३।१२०, ऐतरेय ब्राह्मण २।१९ कौषायन ब्राह्मण १२।३ और शतपथ ब्राह्मण १।४।१।१४ आदि में भी सरस्वती की बड़ी महिमा गाई गई है। कुछ लोग कहते हैं कि कई मन्त्रों में सिन्धु के लिए ही सरस्वती शब्द आया है परन्तु इस विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं है। मैकडोनल और कीथ के मत से भी ऋग्वेद में सरस्वती शब्द सर्वत्र कुरुक्षेत्र में बहने वाली सरस्वती के लिए ही आया है।

"इयमदाद् दिवोदासं वध्र्यश्वाय सरस्वती"[1]

इस सरस्वती ने वध्र्यश्व के लिए दिवोदास को दिया। सप्तसिन्धु की सबसे पूर्व की प्रसिद्ध नदी सरस्वती अपनी अन्य छः बहिनों, शतद्रु, विपाश (व्यास) परुष्णी (रावी) असिक्नी (चनाव), वितस्ता (झेलम) और सिन्ध की तरह हिमाच्छादित स्रोत वाली सदानीरा नहीं थी। जाड़ों और गर्मियों में इसकी धारा अत्यन्त क्षीण हो जाती थी। पर प्रवासियों तक आर्यों को अपने सीमान्त पर इस स्थान पर डटे रहने का इसने अवसर दिया था, इसलिए वह उसके प्रति शेष छः बहिनों से भी अधिक कृतज्ञ थे। परुष्णी सप्तसिन्धु के मध्य में थी। आर्य मानते थे इन्द्र की उनके ऊपर महती कृपा है, तो भी सरस्वती का विशेष आदर करते थे। सरस्वती से पूर्व कुछ योजन पर यमुना एक विशाल नदी थी पर आर्य उसे अपनी नहीं कह सकते थे। दुर्दान्त दस्यु उसके तट पर अधिकार रखते थे यदि सरस्वती ने अन्न और शरण देकर सहायता न की होती तो दस्युओं के सामने आर्यों के पैर उखड़ जाते।

सरस्वती तट का प्रदेश अत्यन्त समृद्ध था। इसी भूमि की गाएं सर्वाधिक दूध देती थीं, यहाँ के बैल सबसे अधिक बलिष्ठ होते थे। सरस्वती के तट की यह भूमि हरे-भरे अरण्यों से, पीपल खदिर, विभीतक, हरिद्र, पलाशादि वृक्षों और मुंज काश्य, कुश दूर्वा आदि तृणों से भरी थी। यहाँ के स्वाभाविक और कृत्रिम जलाशयों में पुण्डरीक जब पानियों में झूलते तो दिशाएं सुगन्धित और सौन्दर्य से भर जाती थी। सरस्वती तट के निवासी भरत हों या कुशिक इन्द्र और अग्नि की सेवा में सदा संलग्न रहते थे। घर-घर में अग्नि प्रदीप्त रहा करती, जिसकी प्रातः सायं परिचर्या करने में प्रत्येक आर्यकुल लगा रहता। प्रातः अथवा

(१) ऋक् ६।६१।१

सायंकाल को यदि इन ग्रामों में कोई पहुँच जाता तो प्रत्येक घर से हवन का धूम आकाश में दिखाई पड़ता उसकी सुगन्ध मन को तृप्त करती, कानों में गायत्री रथन्तर या दूसरे साम के मधुर स्वर सुनाई देते ।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना धियो
विश्वा वि राजति ।[1]

सरस्वती जलरूप अत्यन्त तेज युक्त पाप नाशिका है । अपने प्रवाह से पुरुषों के हृदय में चेतना शक्ति का संचार करती है । इससे सर्व प्रकार की उत्तम बुद्धियों का सर्वतोगामी विकास होता है ।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती ।
अप्रशस्ता इवस्मसि प्रशस्तिम्ब न स्कृधि ॥[2]

माताओं में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ सरस्वती हम जो अपधर्म से कलुषित पापों से दूषित और हीन दीन हो गए हैं । हे माता हम सब को पुण्य प्रदान से निष्पाप बना दो और धन सम्पत्ति भी देकर दीनता हीनता से बचाओ । हमें कीर्ति का भाजन बना दो ।

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥[3]

पांच नदियां सरस्वती में प्रलीन हो जाती हैं क्योंकि उनका प्रवाह सरस्वती के समान ही पुण्य पुनीत और रमणीय है । सरस्वती ही स्वयं पांचों नदियां हो गई है अथवा उन सभी का नाम ही सरस्वती है ।

इडा भागीरथी गंगा पिंगला यमुना नदी ।
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्णाख्या सरस्वती ॥[4]

दक्षिण भाग में इडा नाड़ी गंगा है । वाम भाग में पिंगला नाड़ी यमुना महा नदी है । इन दोनों प्रधान नाड़ियों के मध्य सम्पन्न पवना नाड़ी सुषुम्णा ही चेतना वाहिनी देवी सरस्वती है ।

प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी ।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादपि नित्यशः ॥
सदीव सुष्णमा युक्तः सरस्वत्यां समभ्यह ।
तत्र सम्प्लुत देहस्तु विमुक्तः सर्व पातकैः ॥
सरस्वतीं समासाद्य तर्पयेत्पितृ देवताः ।
सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥
पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गा स्नानफलं लभेत् ।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरिता वरा ॥

(१) ऋग्वेद संहिता म० १ अ० २ सू० ३। १२।यजुर्वेद संहिता २०।८५ (२) ऋग्वेद संहिता २।४१।१६ । (३) शुक्ल यजुर्वेद संहिता ३४।११। (४) योग-योग ग्रन्थ ।

स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती ।
देव मार्गे प्रतिष्ठाय देव मार्गेण निःसृता ॥[१]

पितामह के मुख से निकली हुई नित्य पवित्र सरस्वती के स्मरण करने से सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। जो तृष्णा अथवा प्यास में सरस्वती में स्नान करे, उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। सरस्वती पर देवताओं और पितरों को स्वाहा स्वधा से तृप्त करने वाला मनुष्य मृत्यु पश्चात् सरस्वती लोक को प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। सरस्वती के पूर्व प्रवाह में स्नान करने वाला मनुष्य गंगा स्नान का फल पाता है। जो मनुष्य सरस्वती के दक्षिण प्रवाह में स्नान करता है उसे नर्मदा स्नान का फल मिलता है। जो प्राणी शुद्ध मन प्राची सरस्वती में स्नान करता है वह देवमार्ग को प्राप्त होता है।

इरावती नदी तद्वत्सर्वं तीर्थाधिवासिनी ।
यमुना देविका काली चन्द्रभागा सरस्वती ॥[२]

इरावती यमुना, काली, चन्द्रभागा और सरस्वती नदियाँ सम्पूर्ण तीर्थों में रहने वाली हैं।

येतु श्राद्ध करिष्यन्ति प्राची माश्रित्य मानवाः ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चदिह लोके परत्र च ॥
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणु सदा रवि ।
प्राची देवा निषेवन्ते स ब्रह्मर्षि गणा सदा ॥
तस्मात्प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां तु विशेषतः ।
पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवान् भविता नरः ॥
त्रिरात्र ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम् ।
न तेषां दुष्कृत किञ्चिद्देहमाश्रित्य तिष्ठति ॥
देवमार्ग प्रतिष्ठा च देव मार्गेण निर्गमता ।
प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृत कर्मिणाम् ॥[३]

जो मनुष्य प्राची सरस्वती के तट पर श्राद्ध करेंगे, उनके लिए इहलोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। नर नारायण ब्रह्मा, शिव, सूर्य और ब्रह्मर्षियों के साथ इन्द्रादि सहित देवता भी प्राची सरस्वती की सेवा करते हैं। अतः प्राची सरस्वती सदा सेवनीया है। पञ्चमी तिथि में तो उसकी सेवा का माहात्म्य और भी उत्तम है। पञ्चमी को सरस्वती की सेवा करने वाला धनवान होता है। जो मनुष्य प्राची सरस्वती में त्रिरात्रि उपवास करेंगे उनके पाप नष्ट हो जाएंगे। प्राची सरस्वती देवमार्ग से निकलती है और देवमार्ग में ही प्रतिष्ठित है।

तत्रैव च वसन्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः ।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥[४]

जो मनुष्य सरस्वती तट पर निवास करता है उस को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है।

---

(१) वामन पुराण अ० ४२ श्लोक ७ से ११। (२) मत्स्य पुराण। (३) महाभारत। (४) वामन पुराण अध्याय ३४ श्लोक ११।

सायंकाल को यदि इन ग्रामों में कोई पहुँच जाता तो प्रत्येक घर से हवन का धूम आकाश में दिखाई पड़ता, उसकी सुगन्ध मन को तृप्त करती कानों में गायत्री रथन्तर या दूसरे साम के मधुर स्वर सुनाई देते।

> महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना धियो
> विश्वा वि राजति।[1]

सरस्वती अत्यन्त अत्यन्त वेग युक्त पाप नाशिका है। अपने प्रवाह से पुरुषों के हृदय में चेतना शक्ति का संचार करती है। इससे सर्व प्रकार की उत्तम बुद्धियों का सर्वतोगामी विकास होता है।

> अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती।
> अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥[2]

माताओं में श्रेष्ठ नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ, सरस्वती, हम लोग कर्मधर्म से अनुचित पापों से दूषित और हीन दीन हो गए हैं। हे मातः हम सब को पुण्य प्रवाह से निष्पाप बना दो और धन सम्पत्ति भी देकर दीनता हीनता से बचाओ। हमें कीर्ति का भाजन बना दो।

> पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
> सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥[3]

पाँच नदियाँ सरस्वती में विलीन हो जाती हैं क्योंकि उनका प्रवाह सरस्वती के समान ही पुण्य पुनीत और रमणीय है। सरस्वती ही स्वयं पाँचों नदियाँ हो गई है अथवा उन सभी का नाम ही सरस्वती है।

> इडा भागीरथी गंगा पिंगला यमुना नदी।
> तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्णाख्या सरस्वती॥[4]

दक्षिण भाग में इडा नाड़ी गंगा है। वाम भाग में पिंगला नाड़ी यमुना महा नदी है। इन दोनों प्रधान नाड़ियों के मध्य प्रवाह करने वाली नाड़ी सुषुम्णा ही चेतना वाहिनी देवी सरस्वती है।

> प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी।
> सर्वपापक्षयकरी स्मरणादपि नित्यश॥
> अतीव पुण्यगा युक्तः सरस्वत्यां समभ्यजत्।
> तत्र संप्लुत देहस्तु विमुक्तः सर्व पातकैः॥
> सरस्वतीं समासाद्य सर्वेष्वपि देवताः।
> सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः॥
> पूर्वप्रवाहे यः स्नातिगङ्गा स्नानफलं लभेत्।
> प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरिता वरा॥

---

(१) ऋग्वेद संहिता म० १ अ० २ सू० ३। १२। यजुर्वेद संहिता २०।८६ (२) ऋग्वेद संहिता २।४१।१६। (३) शुक्ल यजुर्वेद संहिता ३४।११। (४) [illegible] प्रमाण।

स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती।
देव मार्ग प्रतिष्ठाय देव मार्गेण निःसृताः ॥[१]

हिमवान के मूल से निकली हुई नित्य प्रवाहित सरस्वती के स्मरण करने से सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। जो तृष्णा अथवा प्यास में सरस्वती में स्नान करे उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। सरस्वती पर देवताओं और पितरों को स्वाहा, स्वधा से तृप्त करने वाला मनुष्य मृत्यु पश्चात् सरस्वती लोक को प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। सरस्वती के पूर्व प्रवाह में स्नान करने वाला मनुष्य गंगा स्नान का फल पाता है। जो मनुष्य सरस्वती के दक्षिण-प्रवाह में स्नान करता है उसे नर्मदा स्नान का फल मिलता है। जो प्राणी शुद्ध मन प्राची सरस्वती में स्नान करता है वह देवमार्ग को प्राप्त होता है।

इरावती नदी तद्वत्सर्व तीर्थाधिवासिनी।
यमुना देविका काली चन्द्रभागा सरस्वती ॥[२]

इरावती, यमुना काली, चन्द्रभागा और सरस्वती नदियाँ सम्पूर्ण तीर्थों में रहने वाली हैं।

येतु श्राद्ध करिष्यन्ति प्राची माश्रित्य मानवाः।
न तेषां दुर्लभं किञ्चदिह लोके परत्र च ॥
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणु सदा रविः।
प्राचीं देवा निषेवन्ते स ब्रह्मर्षि सदा सदाः ॥
तस्मात्प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां तु विशेषतः।
पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवान् भविता नरः ॥
त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम्।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्देहमा श्रित्य तिष्ठति ॥
देवमार्ग प्रतिष्ठा च देव मार्गेण निर्गमता।
प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृत कर्मिणाम् ॥[३]

जो मनुष्य प्राची सरस्वती के तट पर श्राद्ध करेंगे उनके लिए इहलोक और पर लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। नर नारायण, ब्रह्मा, शिव सूर्य और ब्रह्मर्षियों के साथ इन्द्रादि सहित देवता भी प्राची सरस्वती की सेवा करते हैं। अतः प्राची सरस्वती सदा सेवनीया है। पञ्चमी तिथि में तो इसकी सेवा का माहात्म्य और भी उत्तम है। पञ्चमी को सरस्वती की सेवा करने वाला धनवान होता है। जो मनुष्य प्राची सरस्वती में त्रिरात्रि उपवास करेंगे उनके पाप नष्ट हो जाएंगे। प्राची सरस्वती देवमार्ग से निकलती है और देवमार्ग में ही प्रतिष्ठित है।

तत्रैव च वसन्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥[१]

जो मनुष्य सरस्वती तट पर निवास करता है उस को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है।

---

(१) वामन पुराण अ० ३२ श्लोक ७ से ११। (२) मत्स्य पुराण। (३) महाभारत। (४) वामन पुराण अध्याय ३४ श्लोक ११।

सायंकाल को यदि इन ग्रामों में कोई पहुँच जाता तो प्रत्येक घर से हवन का धूम आकाश में दिखाई पड़ता, उसकी सुगन्ध मन को तृप्त करती, कानों में गायत्री रथन्तर या दूसरे साम के मधुर स्वर सुनाई देते ।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना धियो
विश्वा वि राजति ।[1]

सरस्वती अत्यन्त अत्यन्त तेज युक्त पाप नाशिका है । अपने प्रवाह से पुरुषों के हृदय में चेतना शक्ति का संचार करती है । इससे सर्व प्रकार की उत्तम बुद्धियों का सर्वतोगामी विकास होता है ।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥[2]

माताओं में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ सरस्वती हम लोग अधर्म से कलुषित, पापों से दूषित और हीन दीन हो गए हैं । हे माता हम सब को पुण्य प्रताप से निष्पाप बना दो और धन सम्पत्ति, श्री देकर दीनता हीनता से बचाओ । हमें कीर्ति का भाजन बना दो ।

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥[3]

पाँच नदियाँ सरस्वती में विलीन हो जाती हैं क्योंकि उनका प्रवाह सरस्वती के समान ही पुण्य पुनीत और रमणीय है । सरस्वती ही स्वयं पाँचों नदियाँ हो गई हैं अथवा उन सभी का नाम ही सरस्वती है ।

इडा भागीरथी गंगा पिंगला यमुना नदी ।
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्णाख्या सरस्वती ॥[4]

दक्षिण भाग में इडा नाड़ी गंगा है । वाम भाग में पिंगला नाड़ी यमुना महा नदी है । इन दोनों प्रधान नाड़ियों के मध्य चञ्चल गमना नाड़ी सुषुम्णा ही चेतना वाहिनी देवी सरस्वती है ।

प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी ।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादपि नित्यशः ॥
सतीव पुण्यया युक्तः सरस्वत्यां समभ्यह ।
तत्र सम्प्लुत देहस्तु विमुक्तः सर्व पातकैः ॥
सरस्वतीं समासाद्य तर्पयेत्पितृ देवताः ।
सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥
पूर्वप्रवाहे यः स्नातिगङ्गा स्नानफलं लभेत् ।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्म्मदा सरिता परा ॥

---

(१) ऋग्वेद संहिता म० १ अ० ३ सू० ३। १२।यजुर्वेद संहिता २०।८६ (२) ऋग्वेद संहिता २।४१।१६। (३) शुक्ल यजुर्वेद संहिता ३४।११। (४) योग-योग शास्त्र।

स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती ।
देव मार्ग प्रतिष्ठाय देव मार्गेण निःसृताः ॥[१]

पितामह के मुख से निकली हुई नित्य शरीरा सरस्वती के स्मरण करने से सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। जो तृष्णा अथवा प्यास में सरस्वती में स्नान करे, उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। सरस्वती पर देवताओं और पितरों को स्वाहा, स्वधा से तृप्त करने वाला मनुष्य मृत्यु पश्चात् सरस्वती लोक को प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। सरस्वती के पूर्व प्रवाह में स्नान करने वाला मनुष्य गंगा स्नान का फल पाता है। जो मनुष्य सरस्वती के दक्षिण-प्रवाह में स्नान करता है उसे नर्मदा स्नान का फल मिलता है। जो प्राणी शुद्ध मन प्राची सरस्वती में स्नान करता है वह देवमार्ग को प्राप्त होता है।

इरावती नदी तद्वत्सर्व तीर्थाधिवासिनी ।
यमुना देविका काली चन्द्रभागा सरस्वती ॥[२]

इरावती यमुना, काली चन्द्रभागा और सरस्वती नदियाँ सम्पूर्ण तीर्थों में रहने वाली हैं।

येतु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राची माश्रित्य मानवाः ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चदिह लोके परत्र च ॥
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणु सदा रविः ।
प्राचीं देवा निषेवन्ते स ब्रह्मर्षि सदा सदा ॥
तस्मात्प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां तु विशेषतः ।
पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवान् सविता नरः ॥
त्रिरात्र ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम् ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्देहमा श्रित्य तिष्ठति ॥
देवमार्गे प्रतिष्ठा च देव मार्गेण निर्गमता ।
प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृत कर्मिणाम् ॥[३]

जो मनुष्य प्राची सरस्वती के तट पर श्राद्ध करेंगे उनके लिए इहलोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। नर नारायण, ब्रह्मा शिव सूर्य और ब्रह्मर्षियों के साथ इन्द्रादि सहित देवता भी प्राची सरस्वती की सेवा करते हैं। अतः प्राची सरस्वती सदा सेवनीय है। पञ्चमी तिथि में तो इसकी सेवा का माहात्म्य और भी उत्तम है। पञ्चमी को सरस्वती की सेवा करने वाला धनवान होता है। जो मनुष्य प्राची सरस्वती में त्रिरात्रि उपवास करेंगे उनके पाप नष्ट हो जाएंगे। प्राची सरस्वती देवमार्ग से निकलती है और देवमार्ग में ही प्रतिष्ठित है।

तत्रैव च वसन्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः ।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥[४]

जो मनुष्य सरस्वती तट पर निवास करता है उस को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है।

---

(१) वामन पुराण अ० ४२ श्लोक ७ से ११। (२) मत्स्य पुराण। (३) महाभारत। (४) वामन पुराण अध्याय ३४ श्लोक ११।

एवं दिव्यप्रवाहेण ह्यतिपुण्या सरस्वती ।
तस्यां स्नात्वा सर्व तीर्थे स्नातो भवति मानवः ॥[१]

दिव्य प्रवाह के समय सरस्वती बहुत पवित्र है, उस समय जो इसमें स्नान कर लेता है वह सर्व तीर्थों में स्नान फल को प्राप्त होता है ।

"गंगा कनखले पुण्या, कुरुक्षेत्रे सरस्वती"[२]

गंगा का महात्म्य कनखल में अधिक है और सरस्वती का कुरुक्षेत्र में ।

एकापित्रिधामूरत्वा गंगा रेवा सरस्वती ।
एतासां तु पृथग् भावं ये कुर्वन्ति विमोहिताः ॥
तेषां सिद्धं कृतं कर्म जायते पाप कर्मिणाम् ।[३]

गंगा रेवा और सरस्वती तीनों नदियों का मूल तत्त्व एक ही है जो इनको अलग-अलग समझते हैं, वे भ्रम में हैं । ऐसे लोग सिद्धि को प्राप्त नहीं होते ।

यस्तु संवत्सरं मत्या पिबेत्सार स्वतं जलम् ।
गद्य पद्यमयी वाणी तस्य वक्त्रात्प्रजायते ॥[४]

जो श्रद्धा सहित वर्ष भर सरस्वती का जलपान करता है वह गद्य और पद्य लिखने का स्वामी हो जाता है ।

'चत्रे पुण्या सरस्वती"

चैत्र मास में सरस्वती अधिक पुण्य देने वाली हो जाती है ।

उतस्तन प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूता ।[५]

हम लोगों की प्रिया से भी प्रिया वही सरस्वती है जिसकी सात बहनें हैं । सरस्वती की ही हम स्तुति करते हैं ।

' ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत" [६]

सरस्वती तट पर ऋषियों ने यज्ञ किए ।

ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशन ।
गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती ॥
चम सेध्या शिवोद्भे दे नागोद्भे दे च दृश्यते ।
स्नात्वा तु चमसोद्भे दे अग्निष्टोमफल लभेत् ॥
शिवोद्भे दे नर स्नात्वा गोसहस्त्र फल लभेत् ।
नागोद्भे दे नरः स्नात्वा नागलोकमवाप्नुयात् ॥[७]

हे राजन् ! तत्पश्चात नियतात्मा और मिताहार हो वहाँ से विनशन (कुरुक्षेत्र) जावें जहाँ सरस्वती अन्तर्ध्यान होकर मेरु पृष्ठ सुमेरु पर चली जाती है । केवल चमतीर्थ शिवोद्भ व

---

(१) वामन पुराण ३२ श्लोक ४ । (२) मत्स्य पुराण । (३) स्कन्द पुराण रेवा खण्ड । (४) मन्त्र शास्त्र । (५) ऋग्वेद [illegible] म १२ सूं ४ मन्त्र (६) [illegible] । (६) ऐतरेय ब्राह्मण २० २ अ २ । (७) महाभारत वन पर्व अ ८२ श्लोक १११ से ११३ ।

और मानसूद तीर्थों में ही सरस्वती दर्शन हो सकता है। यम तीर्थ में स्नान से अग्निष्टोम यज्ञ का फल सिद्धोदक तीर्थ में स्नान से सहस्र गोदान का फल और मानसूद तीर्थ में स्नान से नाग लोक की प्राप्ति होती है।

सरस्वती तट पर अनेकानेक यज्ञ हुए हैं, कात्यायन श्रौत सूत्र १२।३।२० तथा २४।६।२२, लाट्यायन श्रौत सूत्र १०।१५।१ १८।१३ १९।४ आश्व श्रौ० सूत्र १२।६।२।३, शांखायन श्रौत सूत्र १३।२९, । ऋग्वेद ३।२३।४ ६।६१।६ २।४१।१६ से प्रारम्भ १०।८, १।३।८, ३।५४।१३ ५।४२।१२ ५।४३।११, ६।४९।७ ६।५०।१२ ६।५२।६, ७।९।५, ७।३६।६ ७।९५।६, ७।९६।३ ८।२१।१७, ८।५४।४, १०।१७।७ १०।३०।१२, १०।६४।९, १०।१८४।२ । अथर्व वेद ४।४।६ ५।२३।१ ६।३।२ ६।८९।१ ७।६८।१ १४।२, १४।२० ११।४।४ १९।३२।९, तैत्तिरीय सं० १।८।१३।१ वाजसनेयी सं० १९।९३ १४।११, शतपथ ब्राह्मण ११६, २।४ ११।४।३।३ १२।७।१।१२ तथा २।९, बृहदारण्यकोपनिषद् ६।३।८ वेदों में सरस्वती को सर्व प्रथम नदी (नदीतमा) कहा गया है। ऋग्वेद २।४१।१६ सरस्वती के तट पर बहुत से राजाओं का राज्य था और उसके किनारे पाँच जातियाँ रहती थीं। ऋग्वेद ८।२१।१८, ६।६१।१२, जिमर आल्टेन्डिशलेबेन ११०, ग्रिफिथ हिम्स आफ दि ऋग्वेद १।१६०।२।१० मुइर्स ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद १।२०१ २०२ सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट १।३।१०।

"पूर्व से पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों की ऋग्वेद १०।७५।५ की सूची में गंगा, यमुना सरस्वती और शुतुद्रि है। जिसमें सरस्वती यमुना तथा शतद्रु के बीच में पड़ती है, जो कि वर्तमान सुरसुती (सरस्वती) का स्थान है जो कि थानेश्वर नगर के पश्चिम से बहती हुई पटियाला प्रान्त में घग्घर पश्चिम वाहिनी नदी से मिलती है; तथा सिरसा जिला हिसार से होकर गुजरती है और भटनेर के स्थान पर बालू में लुप्त हो जाती है। परन्तु एक सूखी हुई (हकरा या घग्घर) उस स्थान से सिंधु नदी तक प्राप्त की जा सकती है।[1]

लासन तथा मैक्समूलर के मत से सरस्वती कुरुक्षेत्र की ही सरस्वती है।

'सरस्वती नदी हिमालय श्रेणी के शिवालिक पर्वत श्रेणी की सिरमौर पहाड़ी से निकल कर अम्बाला में आदिबद्री के पास उतरती है। यह हिन्दुओं की पवित्र नदियों में से है। पर्वत में एक झरना था जिससे यह नदी निकलती थी वह प्लक्ष वृक्ष की जड़ के पास ही था, इसलिए यह प्लक्षावतरण या प्लक्ष प्रस्रवण कहा जाता है और तीर्थ स्थान है।'"[2]

महाभारत आदि पर्व अ० १७२, पद्म पुराण स्वर्ग खण्ड अ० १४ और ऋग्वेद १०।७५ में भी सरस्वती को प्लक्ष वृक्ष की जड़ से निकली हुई कहा है।

"यह चलौर ग्राम के पास बालू में विलीन हो जाती है और बरखेरा के पास फिर प्रकट होती है। पहेवा के निकट उरनाय में मारकण्डा नदी में मिल जाती है। यह संयुक्त धारा सरस्वती ही कहलाती है जो बाद में घग्घर में थोड़ी दूर पर मिल जाती है"।[3]

---

१ (i) इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया २१ पेज १६, (ii) मोरस्यम-जनरल आफ दि एशियाटिक सोसायटी पृ० १५, ४६, ७५। (२) ज्याग्रफिकल डिक्शनरी पृ १८०। (३) पंजाब गजेटियर अम्बाला डिस्ट्रिक्ट पेपर्स।

एवं विद्याप्रवाहेण ह्यतिपुण्या सरस्वती ।
तस्यां स्नातः सर्व तीर्थे स्नातो भवति मानवः ॥[१]

विद्या प्रवाह के समय सरस्वती बहुत पवित्र है उस समय जो इसमें स्नान कर लेता है वह सर्व तीर्थों में स्नान फल को प्राप्त होता है ।

"गंगा कनखले पुण्या, कुरुक्षेत्रे सरस्वती"[२]

गंगा का महात्म्य कनखल में अधिक है और सरस्वती का कुरुक्षेत्र में ।

एकापित्रिधाभूत्वा गंगा रेवा सरस्वती ।
एतासां तु पृथग् भाव ये कुर्वन्ति विमोहिताः ॥
तेषां सिद्ध कुत्र कर्म जायते पाप कर्मिणाम् ।[३]

गंगा रेवा और सरस्वती तीनों नदियों का मूल तत्त्व एक ही है जो इनको अलग अलग समझते हैं वे भ्रम में हैं । ऐसे लोग सिद्धि को प्राप्त नहीं होते ।

यस्तु संवत्सरं मत्या पिबेत्सार स्वत जलम् ।
गद्य पद्यमयी वाणी तस्य वक्त्रात्प्रजायते ॥[४]

जो श्रद्धा सहित वर्ष भर सरस्वती का जलपान करता है वह गद्य और पद्य लिखने का स्वामी हो जाता है ।

"चैत्रे पुण्या सरस्वती"

चैत्र मास में सरस्वती अधिक पुण्य देने वाली हो जाती है ।

उकतमः प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूता ।[५]

हम लोगों की प्रिया से भी प्रिया वही सरस्वती है जिसकी सात बहनें हैं । सरस्वती की ही हम स्तुति करते हैं ।

"ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत" [६]

सरस्वती तट पर ऋषियों ने यज्ञ किए ।

ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशन ।
गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती ॥
चम सेऽथा शिवोद्भेदे नागोद्भेदे च दृश्यते ।
स्नात्वा तु चमसोद्भेदे अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥
शिवोद्भेदे नरः स्नात्वा गोसहस्र फलं लभेत् ।
नागोद्भेदे नरः स्नात्वा नागलोकमवाप्नुयात् ॥[७]

हे राजन् ! तत्पश्चात नियतात्मा और मिताहार हो वहाँ से विनशन (कुरुक्षेत्र) जावें जहाँ सरस्वती अन्तर्ध्यान होकर मेरु पृष्ठ सुमेरु पर चली जाती है । केवल चमतीर्थ शिवोद्भव

(१) वामन पुराण ४२ श्लोक ६ । (२) मत्स्य पुराण । (३) स्कन्द पुराण रेवा खण्ड । (४) मन्त्र शास्त्र । (५) ऋग्वेद अष्टक [illegible] अ ११ वर्ग ४ मन्त्र (६) ऐतरेय ब्रा [illegible] । (७) महाभारत शल्य पर्व अ [illegible] श्लोक १११ से ११३ ।

और वामनूद तीर्थों में ही सरस्वती दर्शन हो सकता है। यम तीर्थ में स्नान से अग्निष्टोम यज्ञ का फल त्रिवोद्भव तीर्थ में स्नान से सहस्त्र गोदान का फल और वामनूद तीर्थ में स्नान से नाग लोक की प्राप्ति होती है।

सरस्वती तट पर अनेकानेक यज्ञ हुए हैं, कात्यायन श्रौत सूत्र १२।३।२० तथा २४।६।२२ लाट्यायन श्रौत सूत्र १०।१५।१ १८।११ १९।४, आश्व श्रौ० सूत्र १२।६।२।१ शांखायन श्रौत सूत्र १३।२९, । ऋग्वेद १।८९।३, १६४।४९, २।४१।१६, से प्रारम्भ ३।०८, ३।३८ ५।२५।११ ५।४३।१२, ५।४३।११, ६।४९।७ ६।५०।१२ ६।५२।६, ७।९।५, ७।३६।६, ७।३९।५, ७।४०।३ ८।२१।१७ ८।५४।४, १०।१७।७, १०।३०।१२, १०।६४।९, १०।७५।५, । अथर्व वेद ४।४।६ ५।२३।१ ६।३।२ ६।८९।१ ७।६८।१ १४।२ १।३० १९।४।४ १९।३२।९ तैत्तिरीय सं० १।८।१३।१, वाजसनेयी सं० १९।१२ ३।७।११ शतपथ ब्राह्मण १।६, २।४ ११।४।३।३ १२।७।३।२ तथा २।५, बृहदारण्यकोपनिषद् १।३।८ वेदों में सरस्वती को सर्व प्रथम नदी (नदीतमा) कहा गया है। ऋग्वेद २।४१।१६ सरस्वती के तट पर बहुत से राजाओं का राज्य था और उसके किनारे पाँच जातियाँ रहती थीं। ऋग्वेद ८।२१।१२, ६।६१।१२ जिमर आल्टेन डिस्चेजलेबेन ५।१० ग्रिफथ हिम्स आफ दि ऋग्वेद ११।०।२।१९० लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२०१, २०२ सेव के बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।६०।

"पूर्व से पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों की ऋग्वेद १०।७५।५ की सूची में गंगा, यमुना, सरस्वती और शुतुद्रि है। जिसमें सरस्वती यमुना तथा शतद्रु के बीच में पड़ती है, जो कि वर्तमान सुरसुती (सरस्वती) का स्थान है, जो कि थानेश्वर नगर के पश्चिम से बहती हुई पटियाला प्रान्त में घग्गर पश्चिम वाहिनी नदी से मिलती है तथा सिरसा जिला हिसार से होकर गुजरती है और भटनेर के स्थान पर बालू में लुप्त हो जाती है। परन्तु एक सूखी हुई (हकरा या घग्गर) उस स्थान से सिंधु नदी तक प्राप्त की जा सकती है।"[1]

लासन तथा मैक्समूलर के मत से सरस्वती कुरुक्षेत्र की ही सरस्वती है।

"सरस्वती नदी हिमालय पर्वत के शिवालिक पर्वत श्रेणी की सिरमौर पहाड़ी से निकल कर अम्बाला में आदिबद्री के पास उतरती है। यह हिन्दुओं की पवित्र नदियों में से है। पर्वत में एक झरना था जिससे यह नदी निकलती थी वह प्लक्ष वृक्ष की जड़ के पास ही था इसलिए यह प्लाक्षावतरण या प्लक्ष प्रस्रवण कहा जाता है और तीर्थ स्थान है।"[2]

महाभारत आदि पर्व अ० १७२ पद्म पुराण स्वर्ग खण्ड अ० १४ और ऋग्वेद १०।७५ में भी सरस्वती को प्लक्ष वृक्ष की जड़ से निकली हुई कहा है।

"यह बलौर ग्राम के पास बालू में विलीन हो जाती है और बरखेरा के पास फिर प्रकट होती है। पहेवा के निकट उरनाय में मारकण्डा नदी में मिल जाती है। यह संयुक्त धारा सरस्वती ही कहलाती है, जो बाद में घग्गर में थोड़ी दूर पर मिल जाती है"।[3]

१ (i) इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया ११ पेज १२, (ii) ओल्डहाम-जनरल आफ दि एशियाटिक सोसायटी पृ० ५५, ४६, ७१। (२) आरकियोलॉजिकल सिम्पोजियम पृ० १५०। (३) पंजाब गजेटियर अम्बाला डिस्ट्रिक्ट ?।

"सरस्वती ऋग्वेद में एक बहती हुई नदी के रूप में वर्णित है मनुस्मृति और महाभारत में इसका बालू में विलीन होना वर्णित है, जो कि सिरसा के समीप विनशन तीर्थ कहा जाता है"।[1]

"वैदिक काल में सरस्वती एक बड़ी नदी थी जो समुद्र में गिरती थी"[2] ऋग्वेद में प्रयाग की त्रिवेणी में इसका प्रकट होना कहीं पर थोड़ा भी वर्णित नहीं है। कुरुक्षेत्र की सरस्वती प्राची या पूर्वी सरस्वती है।[3] यह वह नदी है जो कि सूनी नदी के साथ पुष्कर झील से निकलती है।[4] पुराणों में सरस्वती का वर्णन प्लक्ष प्रस्रवण से समुद्र तक है। विनशन में इसके लुप्त हो जाने तथा पुष्करादि में पुनः प्रकट होने तथा पुनः लुप्त होते हुए सौराष्ट्र में सोमनाथ के मन्दिर के पास समुद्र में गिरने का वर्णन है" (महाभारत आरण्य ८१।११ ८।२२, ८।११) । यह नदी कुरुक्षेत्र में है (शांखायन ब्रा० १२।३) । यह नदी है (अभिधान चिन्तामणि १४६) यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है १०८५ । यह नदी ब्रह्मपुत्री है (काव्य मीमांसा १७।५) । यह नदी पश्चिम देश में है । १७।१० यह नदी उत्तरापथ में है । महाभारत सभा पर्व २८।६, यह नदी पश्चिम देश में है और इसके तट पर शूद्र आभीरगण रहते हैं—जो मछली से निर्वाह करते हैं । महाभारत आरण्य० (वि०) ८३।४ यह नदी कुरुक्षेत्र में है और उत्तर की ओर है । महाभारत हरि० वि० १०१।२२, यह नदी उत्तरापथ गामी है । पद्म पुराण सृष्टि खण्ड १८।२११ यह नदी प्रभास पुष्कर और कुरुक्षेत्र में दुर्लभा है और अन्यत्र सुलभा है । स्कन्द० मै० मार्क० १४।४० यह नदी कुरुक्षेत्र में है । वाराह० ८१।००। मत्स्य ११४।२, ब्रह्म० २७।२५ यह नदी हिमालय के पाद से निकलती है और भारत में है, २२।४७ यह नदी कुरुजाङ्गल की सीमा पर है । २२।२१ यह नदी कुरुक्षेत्र में सन्निहित सर की सीमा पर है । १२।४ यह नदी पर्वतों को फाड़ती हुई द्वैतवन में घुस गई वहाँ प्लक्ष वृक्ष में स्थित हुई, और उससे पैदा होकर प्रबल प्रवाह से कुरुक्षेत्र में आई । वहाँ अरन्तुक के समीप से कुरुक्षेत्र को डुबाती हुई पश्चिम को चली गई । ११।१ यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा है । १७।६ यह नदी सर्वकाल बहा और कुरुक्षेत्र में है । भारती० उ० १४।१८ प्लक्ष से पैदा हुई यह नदी मार्कण्डेय के तप स्थान में आई और सन्निहित सर को डुबा कर पश्चिम दिशा को चली गई । अग्नि० १०८।१५ यह नदी कुरुक्षेत्र में तीर्थ है । मनि० ब्रा० ७।६० यह नदी ब्रह्मावर्त की सीमा पर है । वायु पुराण उत्तरार्ध १५।६७ यह नदी विनशन में है ब्रह्माण्ड० म० उ० १३।६२ यह नदी विनशन में है । नीलम० १६८ यह नदी कुरुक्षेत्र में है । पद्म० आदि० १०३।१ यह नदी कुरुक्षेत्र और विनशन में है । २१।१८ यह मेरु पृष्ठ में छिपती है । पद्म पुराण सृष्टि खण्ड १७।२–८ यह देव माता देवी है वाल्मीकि० म० उपो० ११।४४ यह नदी पुष्कर में ब्रह्मा के तीनों अग्नि होम के कुण्डों को पूरा करने को गई । इसके तट पर प्रयस्था धाम है । तैत्तिरीय ब्रा० ८।१।८ हे सरस्वती ने वन के मध्य में स्थित पुरुष अनायास जैसे कमल की जड़ को उखाड़ लेता है उसी प्रकार अपनी तरंगों से पर्वतों के शिखर और मूल तोड़ डाले । स्कन्द० प्रभा० मधु० १०।२ यह

---

(१) जे० आर ए एस १८९३ पृ० ५१ । (२) मैक्समूलर-ऋग्वेद संहिता अमेन्डी १ भा० । (३) पद्म पुराण उत्तर खण्ड म० १७ । (४) पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अ० १८ ।

नदी हिमालय के दधीचि के आश्रम के निम्न वृक्ष से निकलकर दक्षिणाभिमुखी हो पश्चिम सागर को गई। मार्ग में भूमि में प्रविष्ट और प्रकट होती हुई प्रभास में पांच धारावाली हो समरोहीय में प्रवृष्टि हुई इन धाराओं के नाम यह है (१) हरिणी (२) वज्रिणी (३) न्यंकु (४) कपिला (५) सरस्वती। कात्यायन श्रौत सूत्र १२।२६ यह नदी है। वामन० ४६।५० यह नदी कुरुक्षेत्र में है और स्थाणुलिङ्ग के उत्तर में है। २२।२१ यह नदी कुरुक्षेत्र में सन्निहित सर की सीमा पर है।

बड़े बड़े युद्ध जिन्होंने भारतीय इतिहास का भाग्य बदल डाला सरस्वती के आँचल में ही लड़े गए। समय के ज्वारभाटों के साथ-साथ कभी सरस्वती भारतीय राज्य की सीमा बनी और कभी भारतीय राज्य इसकी सीमाओं को लांघ गया। तैमूर से लेकर अहमद शाह अब्दाली तक के प्रत्येक आक्रमणकारी ने अपनी खून से सनी तलवारें सरस्वती के जल में धोईं।

दृपद्वती नदी

दृपद्वती नदी कुरुक्षेत्र की दक्षिणी सीमा का निर्माण करती है। दृपद्वती का अर्थ है पत्थरों वाली। यह एक नदी का नाम है जो कुछ दूर तक सरस्वती नदी के समानान्तर बहती हुई उसमें मिलती है। ऋग्वेद ३।२३।४ में इसका उल्लेख सरस्वती नदी और आप या नदी के साथ भरत राजाओं के कार्य क्षेत्र में आया है। पंचविंश ब्राह्मण २५।१०।१३ तथा बाद के कात्यायन श्रौत सूत्र २४।६।६।१८ आश्वलायन श्रौत १०।१६।४ इत्यादि साहित्य में दृपद्वती तथा सरस्वती यज्ञ करने का प्रमुख स्थान हो गई। मनु में ये दोनों नदियाँ मध्यदेश की पश्चिम सीमा का निर्माण करती है (मनु २।१७ तुलना करो जिमर आल्टेनडिशेलेबेन १८, वेबर इंडिश्चेस्टूडियन १।३४ व जिमर लिट्रेचर ६७।१०२ मैकडानल वैदिक माइथालोजी पृ० ८७) जिमर, वेबर और मैकडानल सरस्वती और दृपद्वती ये दो नदियाँ मध्यदेश की पश्चिम सीमा का निर्माण करती हैं। भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ७९ में इसका नाम घग्घर लिखा है। ज्याग्राफिकल डिक्शनरी पृ० ५७, यह घग्घर नदी अम्बाला और सरहिन्द के बीच बहती थी। इस समय राजस्थान के रेगिस्तान में समाप्त हो जाती है (ए० सी० फिप्सन और टाड जे० ए० एस० बी० पृ० १८१)। जनरल कनिंघम इसको राखी नदी मानते हैं जो थानेश्वर के दक्षिण पूर्व बहती है (आर्की स० रि० वाल्यूम १४) यह कुरुक्षेत्र की दक्षिण सीमा बनाती है। दृपद्वती प्रसिद्ध चितंग चौतंग या चितव है जो सरस्वती तक जाती है (इम्पीरियल गजटियर आफ इण्डिया पृ० २६, रैप्सन एन्शेन्ट इंडिया पृ० ५१) यही बात ठीक मालूम पड़ती है (जे० एस० बी० १८६३ पृ० ५८) यह नदी पलकी वन में है (वामन पुराण अ० ३६) ए० सी० फिप्सन और टाड इसको घग्घर मानते हैं (ज्याग्राफिकल डिक्शनरी)। रैप्सन इसे चितंग चौतंग या चितव मानते हैं। (ज्या० डि०) कनिंघम इसे राखी मानते हैं। (ज्या० डि०) वस्तुतः एन्शेंट ज्याग्रफी में दृपद्वती का कोई नाम नहीं लिखा है। दृपद्वती नाम से ही व्यवहार है। गजटियर में राखी नाम लिखा है। इससे गन्दनाथड़े का कथन खण्डित है। वस्तुतः यह कुरुक्षेत्र की एक नदी का नाम है जो सरस्वती

की सहायक है। आजकल यह "रती" नाम से कही जाती है ऐसा गजेटियर में लिखा है। यह सरस्वती से दक्षिण की नदी है। जो लोग घग्घर कहते हैं, उनका मत ठीक नहीं क्योंकि घग्घर सरस्वती से उत्तर में है और दृषद्वती दक्षिण में होना लिखा है। यह ब्रह्मावर्त की दक्षिण सीमा की नदी है और मध्यदेश में है। मनुस्मृति २।१७ तथा २१ में इसका नाम आया है। इसका नाम भद्रमद्वती भी है। ऋग्वेद ३।२३।४ में एक मन्त्र अग्नि स्तुति में आया है और भरत के पुत्र देवश्रवा और देववात इस सूक्त के ऋषि हैं। अर्थ यह है "हे अग्ने! इला=गो रूप धारिणी पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थान में दिनों के बीच में सुन्दर दिन (जिस दिन इन्द्रादि देव श्रेष्ठ देवताओं का पूजन होता है वही श्रेष्ठ दिन है) में हम आपका स्थापन करते हैं। वे उत्तम स्थान कौन हैं—दृषद्वती नदी मानुष तीर्थ आपया नदी और सरस्वती नदी। वायु पुराण ४५।९५ यह नदी हिमालय के चरण से निकलती है। पद्म पुराण आदि॰ ६।१२।२५ से २७ तक यह नदी भारतवर्ष में है। ब्रह्म॰ २७।२६ यह नदी भारत में है और हिमालय के चरण से निकलती है। मत्स्य पुराण २२।२० यह नदी पितृ कल्पना और श्राद्ध में करोड़ गुना फल देने वाली है। ५०।६७ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। ११४।२१ यह नदी हिमालय के पार्श्व से निकलती है। वराह॰ ८५।० यह नदी भारत में है और हिमालय के पाद से निकलती है। पाद समीप वाले पर्वत को कहते हैं। वामन पुराण १३।२२ यह नदी कुमार द्वीप (भारत) में है और हिमालय के पाद से निकलती है। २२।४७ यह नदी कुरु जङ्गल की सीमा पर है ३३।६ यह नदी ब्रह्मावर्त की सीमा पर है और भारत में है। ६५।८ यह नदी कुरुक्षेत्र में है और वर्षा काल में बहती है। कूर्म॰ ब्राह्मी पू॰ ४७।२६ तथा मार्क॰ ५७।१७ यह नदी भारत में है और हिमवत् पाद से निकलती है। भवि॰ ब्रा॰ ७।६० यह नदी ब्रह्मावर्त की सीमा पर है। देवी भागवत ११।१७ यह नदी भारत में है। श्रीमद्भागवत ५।१९।१८ यह नदी भारत में है। महाभारत भीष्म ९।१५ यह नदी भारत में है। ब्रह्मा॰ प्र॰ १६।२६ यह नदी हिमवत् पाद से निकलती है। ब्रह्मा॰ उपो॰ १३।३९ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। इस पर किया श्राद्ध अक्षय होता है। वामन॰ ३६।४८ यह नदी कुरुक्षेत्र के फल्गुकी वन में है। श्रीमद्भागवत १ ।७१।२२ यह नदी सरस्वती से पश्चिम में है। भगवान् श्री कृष्ण द्वारका से दिल्ली आते हुए इसको पार करके सरस्वती तट पर पहुँचे। कालिका पुराण ५१।२ यह नदी ठंडे और स्वच्छ जल वाली है और तुरन्त तोड़े हुए पुरुषे के समान रंग वाली और पाप नाशिनी है, स्कन्द॰ प्रभा॰ चातुर्थ॰ ७७।१६ यह नदी पुण्या है। महाभारत शान्ति पर्व (शि॰) ५८।१० यह नदी कुरुक्षेत्र में है और हस्तिनापुर से भीष्म शर शय्या के स्थान तक जाने पर बीच में पड़ती है। महाभारत भार (शि) ८३।४ (म) ९१।१९५ यह नदी कुरुक्षेत्र के दक्षिण भाग में है। विष्णु धर्मोत्तर १।११।६ यह नदी भारत में है और हिमवत् पाद से निकलती है, ३।२।११ तथा ६५ यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है। मेदिनी कोष त॰ च २ यह एक नदी है। अभिधान चिन्तामणि यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है। क्षीर॰ २७।७१ यह नदी है। नीलमत् पु॰ १३।११ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। कात्यायन श्रौत सूत्र २४।२।१ आश्वलायन श्रौत सूत्र १ ।१७।१, ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१ ।१५, कात्यायन श्रौ सू॰ २४।११९ जहाँ इसका प्रयोग साधारण हो गया था बृहद् आरण्यकोपनिषद् ४।१।१६ तथा २।१ शांखायन श्रौत सूत्र ४।१४।६, कात्यायन श्रौत सूत्र १५।४।१० आदि। इसलिए देशीय विशेषण (पृथ्वी से सम्बद्ध) कात्यायन श्रौत सूत्र

२२।४।२२, लाट्यायन श्रौत सूत्र ८।६।२८, ऐतरेय ब्राह्मण ८।१०, बहुत बार का अवतरण १४।११ लाट्यायन श्रौ० सू० १०।१६।४ में सरस्वती के संगम पर अपांनपात आग्नेय पुरोडाश से यज्ञ का प्रारम्भ लिखा है ८ में दृषद्वती के दक्षिण तीर से जाना लिखा है और ६ में दृषद्वती के उत्पत्ति स्थान प्लक्ष तक जाना लिखा है। कात्यायन श्रौत सूत्र २४।६।१८ में "दृषद्वत्याप्यय" शब्द आया है, "दृषद्वती संगम" अर्थ है २४।२३० में दृषद्वती तट का वर्णन है। शौनकीय बृहद्देवता २।२।१३७ यह एक नदी है। ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१०।१४ में "दृषद्वती के तट पर" लिखा है। लाट्यायन श्रौत सूत्र १०।१ में "यदि सोदकास्यात्" २ में "अप्यनुदकायां" में सोदका अनुदका दोनों विशेषण इसे वर्षावाहा नदी बता रहे हैं। इसका वर्णन पुराणों में भी है।

दृषद्वती के उत्पत्ति स्थान का नाम दृषद्वती प्रभव अथवा प्लक्ष है। यह यमुना के समीप है और हिमालय के अत्यन्त पर्वत पर है। लाट्यायन श्रौत सूत्र १०।१६।१,

दीर्घसत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घं सत्रम् ईजिरे ।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ॥[1]

दृषद्वती नदी के तट पर कुरुक्षेत्र देश में लम्बा यज्ञ कर रहे थे।

आपया नदी

पुराणों में इस नदी का नाम आपगा लिखा है।[2] सरस्वती और दृषद्वती की भांति यह नदी भी कुरुक्षेत्र की प्रसिद्ध नदी रही है। परन्तु शास्त्रों के वर्णन के सिवाय इस नदी का और कोई चिन्ह कुरुक्षेत्र में नहीं है। दृषद्वती तो आजकल की चौतग या राक्षी नदी को कह भी सकते हैं परन्तु आपया नदी का तो कोई चिन्ह ही नहीं मिलता। आपगा के नाम से केवल एक पुराना तीर्थ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दक्षिण में है, परन्तु कभी यह तीर्थ नदी रहा होगा। ऐसा स्थान पर जाकर देखने से ज्ञात नहीं होता। परन्तु शास्त्रकारों, विद्वानों और पुराणों में आपया नदी को कुरुक्षेत्र में वर्णित किया है। आपया नदी के विषय में मेरी यह खोज है कि निमर इसको सरस्वती के समीप उसकी शाखा नदी जो थानेश्वर के पास होकर बहती थी मानता है। विल्सन अपनी पुस्तक आर्यावर्तीया। में आपया को कुरुक्षेत्र की नदी मानता है। महाभारत में इसको एक प्रसिद्ध नदी लिखा है। पद्म पुराण २६।६३ में यह मानुष तीर्थ से पूर्व एक कोस पर है और वर्षाकाल की नदी है जो अस्थिपुर के पास ओहयरदेव के समीप है। ब्रह्म० २७।२७ में इसको हिमालय से निकली हुई नदी माना है। वामन पुराण ४।७ इसको कुरुक्षेत्र की वर्षा-काल की बहने वाली नदी कहता है ६६।१ में मानुष तीर्थ से पूर्व एक कोस पर माना है। नारदीय पुराण उत्तर ६५/२८ में इसको महानदी और मानुष तीर्थ से पूर्व एक कोस पर कुरुक्षेत्र में माना है। वायु पुराण अ० १७।२ में इसको पवित्र नदी लिखा है। पद्म पुराण आदि २७।६४ में मानुष तीर्थ से पूर्व एक कोस अस्थिपुर नामक स्थान में ओहयरदेव के समीप माना है। महाभारत आरण्यपर्व ८३।६७ में मानुष तीर्थ से पूर्व एक कोस पर माना है। कु० पूना ८१।५५ में भी ऐसा ही पाठ है। म० ६६।३३ में आपगा ऐसा पाठ है। ६६।१०२ में आपया पाठ है और यहाँ पर महेश्वर देव का वर्णन है। विष्णु धर्मोत्तर में २।२५।१८३ में इसको नदी माना है।

---

(१) वामन पुराण। (२) पद्म पुराण २६।५१।

अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातक दूषिता ।
अस्मिंस्तीर्थे नरा स्नाता मुक्ता यान्तु परां गतिम् ॥[१]

जिसने कहीं और पाप किए हैं और पञ्च पापों से भी दूषित है, इस तीर्थ में स्नान करके वह मुक्त हो जाता है और परमगति उसे मिलती है।

ग्रहनक्षत्र ताराणां कालेन पतनाद्भयम्।
कुरुक्षेत्रमृतानां च पतन नव विद्यते ॥[२]

समय बीत जाने पर ग्रह नक्षत्र तारों का भी पतन हो जाता है परन्तु कुरुक्षेत्र में मरने वाले मनुष्य का कभी पतन नहीं होता।

केदारे च महाक्षेत्रे प्रयागे च विशेषतः।
कुरुक्षेत्रे च यः प्राणान् त्यजेत् यातिस निर्वृतिम् ॥[३]

केदार, महाक्षेत्र, प्रयाग और कुरुक्षेत्र में जो प्राण त्यागता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

इह ये पुरुषा केचिन्मरिष्यन्ति क्षतक्रतो।
यास्यन्ति सुकृतां लोकान्पुनरावृत्ति दुर्लभान् ॥
मानवा ये निराहारा देह त्यक्ष्यन्त्य।
युधिना निहता सम्यगपि वै तीर्थगा नृप ॥
ते स्वर्ग भाजो राजेन्द्र भविष्यन्ति न संशय।
शिवं महापुण्यमिदं न्मौकसां सु संमतं सर्व गुणैं समागतम्।
अतश्च सर्वेऽमहता नृपा रणे यास्यन्ति पुण्यां गतिमक्षयां सदा ॥[४]

महाभारत युद्ध के पश्चात् देवर्षि लोमश के अनुग्रह से दिव्य दृष्टि पाए हुए वृद्ध सेवी महाराज युधिष्ठिर ने प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र से कहा कि 'हे पिता इस धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र म जिन वीरों ने उत्साह के साथ युद्ध में सहस्रों शत्रुओं को मारा उन सत्य पराक्रम उत्तम पुरुषों को देवराज इन्द्र के समान लोक प्राप्त हुए हैं। जिनके मन में युद्ध देखकर उत्साह नहीं हुआ और उनके मन में केवल यह विचार था कि युद्ध करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि मैं क्षत्रिय हूँ वह वीर जो यहाँ मारे गए उनका समागम गन्धर्वों के साथ हुआ। जो आक्रमण करते हुए संग्राम से विमुख युद्ध में मारे गये उनको यक्ष लोक मिला। जिन्होंने शत्रुओं के सामने खड़े होकर तेज शस्त्रों से प्राण दिए उनको ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। हे राजन्! इस धर्म युद्ध में जिन लोगों की किसी भी कारण मृत्यु हुई वह उत्तर कुरु में जन्में हैं।

ब्राह्मणों और उपनिषदों में कुरुक्षेत्र का बार-बार उल्लेख है। यह देव पूजा की पुण्य भूमि और सारे प्राणियों का उत्पत्ति स्थान है।

"यदनुदेवानां देव यजन तदनु स्येषां भूतानां ब्रह्म सदनम्"

इसलिए अनेक विद्वानों ने कुरुक्षेत्र को आर्यों और प्राणियों का आदि उत्पत्ति स्थान कहा है। कुरुक्षेत्र की सरस्वती नदी के पास ही आदिम आर्य निवास था। इस सिद्धान्त के

(१) वामन पुराण अध्याय ४२ श्लोक १६। (२) वामन पुराण अ० ३४ श्लोक १२। (३) शिव पुराण। (४) महाभारत।

विरुद्ध कोई अकाट्य्य नीय युक्ति भी नहीं है। जे० बी० हाल्डेन के मत से भी मानवोत्पत्ति का स्थान यही है।

तीर्थराज कुरुक्षेत्र

तीर्थ शब्द तृ धातु से बना है। जिस पवित्र जल, महात्मा ऋषि अथवा पुण्यभूमि के सेवन से सब मानव सुख शान्ति अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकें उन्हीं को शास्त्रकार तीर्थ कहते हैं।

'निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ"[1]

तीर्थ शब्द वेदादि पवित्र सद् शास्त्र जलाशय, ऋषि सेवित पुण्य जलाशय और गुरु का बोधक है।

"तीर्थ शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्याय मन्त्रिषु"[2]

तीर्थ अथवा वेद शास्त्र अश्वमेधादि विधिपूर्वक किए गए यज्ञों का स्थान पुण्यक्षेत्र अवतार, सिद्ध ऋषि और पवित्र जल।

तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपाय ।
अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्याय मन्त्रिषु ॥[3]

पुराणों में तीर्थ की परिभाषा इस प्रकार है।

"न तीर्थता जलस्याहुनस्थलस्य वनस्य वा।
अध्यासित महद्भिर्यत्तत्तीर्थमिति विदुर्बुधा ॥[4]

साधारण जल स्थल व वन को तीर्थ नहीं कहते वरन् वह स्थान तीर्थ कहलाता है जहां सेवा और तपादि से महर्षि और देवादि ने सिद्धि प्राप्त की है।

तीर्थ तीन प्रकार के होते हैं—

स्थावर तीर्थ

नदी ग्राम, क्षेत्र वन पर्वत इत्यादि स्थान जिनमें महात्माओं ऋषियों मुनियों ने अनुष्ठान और तपस्या से ऐसा वातावरण बनाया है कि जिसमें श्रद्धा भक्ति, प्रेम से स्वास लेने रहन-सहन करने स्नान दान तप जप करने से मनुष्य की आत्मा पवित्र होती है।

मानस तीर्थ

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रह: ।
सर्वभूत दया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥

---

(१) अमर कोष तृतीय काण्ड श्लोक ८५। (२) विश्व कोष—थकिम् ८। (३) मेदिनी १० [७]। (४) कूर्म पुराण।

ज्ञान तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि च तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ।।[१]

सत्य क्षमा इन्द्रिय निग्रह, प्राणीमात्र पर दया आर्जव दान मनोनिग्रह संतोष ब्रह्मचर्य प्रिय भाषण, विवेक, धृति और तपस्या इन सबसे बड़ी मन की शुद्धि है। तीर्थों के द्वारा इन उत्तम धर्म व श्रेष्ठ गुणों को मन और जीवन में धारण करने का अवसर मिलता है।

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ।।
गङ्गा द्वारं च केदारं सन्निहत्य तथैव च ।
एतानि सर्व तीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ।।[२]

इन्द्रियों को वश में करने वाले पुण्यात्मा को कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य, पुष्कर हरिद्वार केदार व सन्निहत्य सब तीर्थ घर में ही मिलकर उसके पाप हर लेते हैं।

सत्यं तीर्थं दया तीर्थ तीर्थमिन्द्रिय निग्रह ।
वर्णाश्रमीणां गेहेपि तीर्थं सम्यमुदाहृतम् ।।[३]

वर्णाश्रमियों के लिए सत्य दया इन्द्रिय निग्रहादि सत्कर्मतीर्थ घर में ही निवास करते हैं।

आत्मा तीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।
मनः शुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नान माचरेत् ।[४]

आत्मा रूपी विख्यात तीर्थ ब्रह्मवादियों से सेवित है। जिसमें नित्य स्नान करने से मन शुद्ध हो जाता है।

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शील समाधियुक्ता।
तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ।।
एतत् प्रधान पुरुषस्य कर्म, यदात्मसम्बोध सुखे प्रविष्टम् ।
ज्ञेय तदेव प्रवदन्ति सन्तस्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान् ।।
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं य यैकता समता सत्यता च ।
शीले स्थितिर् दण्डविधानमार्जवम् ततस्ततश्चोपरमः क्रियासु ।।[५]

आत्मा नदी है और संयम पुण्य तीर्थ उसमें शील समाधियुक्त सत्यरूपी जल प्रस्तुत है। इस जल में स्नान करने वाले संयमात्मा पुरुष प्रकाश में चन्द्रमा के समान विराजमान होता है। आत्म ज्ञान रूपी सुख में प्रविष्ट होना ही पुरुष का प्रधान कर्म है संयमी को ज्ञेय कहते हैं जिसके ज्ञान को प्राप्त होकर मनुष्य सब कामनाओं को त्याग देता है। ब्राह्मण के लिए एकता समता और सत्यता ही परम धन है शील में स्थित होना दान आर्जव उसका विधान और सन्तोष ही उसकी परम क्रिया है।

---

(१) स्कन्द पुराण का० ४ अध्या ६ श्लोक २९।१ । (२) व्यास स्मृति अ ४ श्लोक ११ १४ । (३) मत्स्य पुराण । (४) कूर्म पुराण । (५) वामन पुराण अ० ४३ श्लोक २५, २६, २७ ।

विप्राणां चरणौ तीर्थं गवां पृष्ठं तथा मतम् ।
एते यत्र हि तिष्ठन्ति तच्च तीर्थमुदाहृतम् ॥
बालानां च शिरस्तीर्थं स्वं तीर्थं चक्षुरुच्यते ।
तथैव दक्षिणः कर्णस्तीर्थं स्वं परिगण्यते ॥
सत्यं वाक्यं तु वाक् तीर्थं पुराणपठनं तथा ।
देवलिङ्गपरं चित्तं तीर्थमित्युच्यते बुधैः ॥
असच्चिन्ताविरहितं मानसं तीर्थमुच्यते ।
दातॄणां च करौ तीर्थं देवपूजाकरौ तथा ॥
अन्तस्तीर्थं भूतशुद्धया प्राणायामाच्च नासिके ।
मन्त्रितं चासनं तीर्थं पैतृकी वसतिस्तथा ॥
तत्राषाढः कार्तिकश्च माघो वैशाख एव च ।
तीर्थान्युक्तानि मासा वै चत्वारोऽभीष्टदायकाः ॥
पुराणपठनं यत्र यत्र पद्मवनानि च ।
तच्च तीर्थं समाख्यातं गुरुदेवगृहं तथा ॥
शालग्रामशिला यत्र तीर्थं तत् क्रोशयुग्मकम् ।[1]

ब्राह्मणों के दोनों चरण तीर्थ हैं तथा गायों की पीठ तीर्थ मानी गयी है। जहाँ ये रहते हों उसे भी तीर्थ कहा गया है। बालकों का सिर तीर्थ होता है तथा अपनी आँख तीर्थ होती है। अपना दाहिना कान भी तीर्थ माना गया है। सत्य वचन वाणी का तीर्थ है, पुराणों का पठन भी तीर्थ है। देवता का ध्यान करने वाला चित्त भी विद्वानों द्वारा तीर्थ कहा जाता है। असत्-चिन्तन से मुक्त मन भी तीर्थ ही है। दाताओं के दोनों हाथ भी तीर्थ हैं। तथा देव पूजा करने वाले दोनों हाथ भी तीर्थ होते हैं। भूत शुद्धि से अन्तःकरण तीर्थ रूप हो जाता है और प्राणायाम से नासिका तीर्थ बन जाती है। अभिमन्त्रित आसन भी तीर्थ ही होता है तथा पिता पितामहों का घर भी तीर्थ है। महीनों में आषाढ़ कार्तिक माघ और वैशाख चार महीने तीर्थ हैं और अभीष्ट फल को देने वाले हैं। जहाँ पुराणों का पठन अथवा कमल वन हो वह स्थान तथा गुरुगृह और देवालय भी तीर्थ कहे गए हैं। भगवान् शालग्राम जहाँ विराज रहे हों वहाँ दो कोस तक तीर्थ होता है।

जंगम तीर्थ

यह महात्मा और सन्त जो तीर्थ स्थानों पर वास करते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर ने महात्मा विदुर से कहा था—

भवद् विधा भागवतास्तीर्थो भूताः स्वयं विभो ।
तीर्थो कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदा भृता ॥
साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मनिष्ठा लोक पावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्ग सङ्गात्तेष्वास्तेऽप्यभिद्य हरिः ॥[2]

---

(१) बृहद्धर्म पू०खं० १५।२-८, १७।१४।१८। (२) महाभारत।

ऐसे साधु जिन्होंने इस लोक और परलोक की सारी वासनाओं को त्याग दिया है जो शान्त चित्त, ब्रह्मनिष्ठ और स्वाभाविकता से ही लोगों को पवित्र करते रहते हैं। वह अपने सत्संग से ही दूसरों के पापों को धो देते हैं क्योंकि उनके भीतर अघनाशक भगवान् सदा निवास करते हैं अतः मनुष्य यदि अपना जीवन सफल करना चाहता है तो उसके लिए तीर्थ यात्रा अति आवश्यक है।

यह संसार और इस संसार में बसने वाले सब नश्वर हैं।

नलिनी दलगत जलवत् तरलं
तद्वज्जीवनमतिशय चपलम्।
क्षणमपि सज्जन संगति रेका,
भवति भवार्णव तरणे नौका॥

मनुष्य जीवन पद्म् पत्र पर ठहरे हुए जल की भाँति चंचल है इसका कोई भरोसा नहीं कि कब समाप्त हो जाए। हाँ यदि मनुष्य क्षण भर भी महात्माओं का सत्संग कर ले तो वह क्षण मात्र का सत्संग ही अपार संसार सागर से तरने के लिए नौका का काम दे जाता है।

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम्।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते॥[1]

हे भरत श्रेष्ठ भीष्म! ऋषियों का यह परम गोपनीय सिद्धान्त है कि नियम से तीर्थों में जाना अति पुण्यदायक है और यज्ञों से भी बढ़कर है।

विद्वानों के मतानुसार—

मेधाजननमग्र्यं वै तीर्थवंशानु कीर्तनु कीर्तनम्।
अपुत्रो लभते पुत्रम धनोधनमामुयात्॥
महीं विजयते राजा वैश्यो धनमाप्नुयात्।
शूद्रो यातीप्सितान् कामान् ब्राह्मणः पारग पठन्॥
यश्चेदं शृणुयाम् नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः
जाति स्मरणत्वा माप्नोति नाक पृष्ठे च मोदते॥

तीर्थों का कीर्तन करना तथा सुनना बुद्धि को बढ़ाता है। उन्नति पथ पर अग्रसर करता है। पुत्रहीन पुत्र को और धनहीन धन को पाता है तथा शूद्र मनोकामनाओं की प्राप्ति करता है। ब्राह्मण तो संसार से पार ही हो जाता है, क्योंकि वह ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हो जाता है और जो लोग तीर्थों के महत्व को श्रद्धा सहित सुनते हैं उनका अन्तःकरण ऐसा पवित्र हो जाता है कि उनको पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है और वह स्वर्ग का सुख पाते हैं।

महाभारत में भीष्म जी ने कहा है—

यथा शरीरस्य देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्याम देशाः केचित् पुण्यतमाः स्मृताः॥

---

(१) महाभारत वन पर्व अध्याय ८२ श्लोक १७।

जैसे शरीर के कतिपय भाग पवित्र माने गए हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कतिपय भाग तीर्थादि बहुत पवित्र माने गए हैं।

प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसः।
परिग्रहान्मुनीनाञ्च तीर्थानां पुण्यता स्मृता ॥[1]

भूमि, जल और तेज के अद्भुत प्रभाव के कारण तथा मुनियों, महर्षियों सन्तों और महात्माओं के निरन्तर निवास के कारण तीर्थों में पवित्रता होती है।

तीर्थ यात्रा का विश्लेषण इस पद में बहुत सुन्दर ढंग से दिया गया है।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥[2]

जिसके हाथ पैर और मन अपने वश में हों तथा जो विद्या तप और कीर्ति से सम्पन्न हो, वही तीर्थ सेवन का फल पाता है। जो प्रतिग्रह से दूर रहे तथा जो कुछ अपने पास हो उसी में संतुष्ट रहे और जिसमें अहंकार का अभाव हो वही तीर्थ का फल पाता है। जो दम्भादि दोषों से दूर, कर्तव्य के अहंकार से शून्य अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो वह सब पापों से विमुक्त हो तीर्थ के वास्तविक फल का भागी होता है। राजन्! जिसमें क्रोध न हो जो सत्यवादी और दृढ़ता पूर्वक व्रत का पालन करने वाला हो तथा जो सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखता हो वही तीर्थ के फल का भागी होता है।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥

जो श्रद्धावान नहीं पापी नास्तिक और शंकाएँ उठाने वाला है, जो निष्ठावान नहीं है ऐसे लोग तीर्थ फल नहीं पाते। क्योंकि जब हृदय निर्मल होगा तब ही उस पर सत्संग का प्रभाव हो सकता है। ज्ञान के बिना संसार और जीवन अन्धकार है और श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाए बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा
निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥[3]

उठो जागो श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानी पुरुषों ने बताया है कि धर्मकार्य पर चलना वैसा ही कठिन है जैसा छुरे की धार पर चलना कठिन है।

यह आवश्यक नहीं कि जो भी तीर्थों पर जाएगा उसे ही अक्षय पुण्य और अमरत्व

---

(१) महाभारत। (२) महाभारत वन पर्व अ० ८२ श्लोक ९, १० ११,१२। (३) कठोपनिषद् १—३—१४।

मिलेगा। यदि ऐसा हो जाए तो तीर्थों पर जाते जाते लाखों लोग महात्मा बन गए होते बल्कि—

> यस्य वाङ्‌ न सी शुद्धे हस्तौ पादौ च संयतौ।
> अलोलुपो ब्रह्मचारी स तीर्थफलमश्नुते॥
> यस्य तीर्थेषु ये देवा यस्य तीर्थेषु ये द्विजाः।
> पूजनीयाः प्रयत्नेन स तीर्थफलमश्नुते॥[१]

जिसकी वाणी और मन शुद्ध है। हाथ और पांव संयत हैं लोभी नहीं है जो ब्रह्मचारी है और जो यत्न से तीर्थ की पूजा करता है उसे ही तीर्थफल मिलता है।

> तीर्थान्यनुसरन्धीरः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
> कृत पापश्च शुध्येत किं पुनः शुभ कर्मकृत्॥
> तिर्यग्योनिं न गच्छेत कुदेशेन च जायते।
> स्वर्गो भवति वै विप्रो मोक्षो पाय च विन्दति॥[२]

श्रद्धा और भक्ति से जितेन्द्रिय रहकर तीर्थ यात्रा करने वाला चाहे वह पापी भी क्यों न हो निष्पाप हो जाता है और जो पहले से ही शुभकर्म करता है उसकी तो बात ही क्या है। तीर्थ सेवी पशु, पक्षी आदि तिर्यग्योनि में जन्म नहीं लेते। कुदेश में उसका जन्म नहीं होता और वह स्वर्ग पाने वाला ब्राह्मण हो जाता है। वह मोक्ष के साधनों ब्रह्मज्ञानादि का भी लाभ करता है।

> *येनकादश सङ्ख्यानि यम्यितानीन्द्रियाणि वै।*
> सतीर्थफलमाप्नाति नरो न क्लेशभाग्भवेत्॥
> अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च।
> अदत्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाभिजायेत॥
> मातृवत्पर दारांश्च पर द्रव्याणि लोष्ठवत्।
> आत्मवत्सर्व भूतानि स तीर्थफलमश्नुते॥
> सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रम निवासिनाम्।
> तीर्थं तु फलदं ज्ञेयं नात्र कार्य्या विचारणा॥[३]

जिसके वश में ग्यारह इन्द्रियां हैं वह तीर्थ फल पाता है। तीर्थ स्नान करने से मनुष्य आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं। जो तीन रात्रियों तक निर्जल व्रत नहीं करता तीर्थयात्रा नहीं करता स्वर्ण और गाय का दान नहीं करता वह मनुष्य अगले जन्म में दरिद्र बनेगा। जो दूसरों की स्त्री को माता दूसरों के धन को मिट्टी और सबको अपने तुल्य समझता है उसे तीर्थ फल मिलेगा। सब वर्णों वाले सब आश्रमों के लोगों को तीर्थ फल मिलता है।

> अश्रद्दधानः पाप्मात्मा नास्तिकोऽच्छिन्न संशयः।
> हेतु द्रष्टाश्च पञ्चैतेनो तीर्थफलमश्नुते॥[४]

जो श्रद्धा हीन पापी और नास्तिक हैं जो इस संसार को ही सब कुछ मानता है और पर

---

(१) कूर्म पुराण। (२) पद्म पुराण। (३) स्मृति सार। (४) मत्स्य पुराण।

लोक पर विश्वास नहीं करता जो तर्क और खण्डन को तैयार रहता है उसे तीर्थफल नहीं मिलता ।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमा ।
तैरर्जितानि पुण्यानि तद्वतानि भवन्ति वै ॥[1]

जो पुराणों में लिखे को अर्थवाद और अतिशयोक्ति कहते हैं उन नीच व्यक्तियों का संचित पुण्य भी झूठी प्रशंसा के समान नष्ट हो जाता है।

परन्तु तीर्थ यात्रा प्रत्येक के बस की बात नहीं वास्तव में भाग्य से ही तीर्थ यात्रा होती है ।

नाव्रती ना कृतात्मा च ना शुचिर्नचचलस्वर. ।
स्नाति तीर्थेषु कौरव्य न च पापमतिनर ॥[2]

हे कुरु श्रेष्ठ ! जिसका संकल्प शुद्ध नहीं जो जितेन्द्रीय नहीं अपवित्र और दुष्ट हृदय वाला है वह न तो तीर्थों में स्नान करता है और न ही उसे तीर्थ मिलते हैं ।

नृणां पाप कृतां तीर्थेसर्वेऽपि शमनं भवेत् ।
अपूर्वं पुण्य प्राप्तिश्च भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥[3]

पापी के पाप तीर्थ शमन कर देते हैं और जो शुद्ध हृदय और निष्पाप है उसे तीर्थ पर जाकर अपूर्व फल मिलता है ।

तीर्थ स्नान फल और तीर्थ फल

तीर्थ स्नान फल और तीर्थ फल में बड़ा अन्तर है। तीर्थ फल और बात है और तीर्थ स्नान फल और बात है। यह कोई आवश्यक नहीं कि तीर्थ पर जाकर प्रत्येक प्राणी को तीर्थ फल मिल जाए। यदि कोई तीर्थ पर श्रद्धा भावना से नहीं जाता बल्कि सैर या सुन्दर दृश्य देखने जाता है तो तीर्थ में स्नान करने पर उसे केवल स्नान फल ही मिलेगा उसे तीर्थ फल नहीं मिलेगा ।

कार्यान्तरेण यो गत्वा स्नान तीर्थे समाचरेत् ।
तीर्थ यात्रा फल तस्यनास्ति स्नान फलं भवेत् ॥
तीर्थानुगमन पर्या तपः परमि होच्यते ।
तदेव कृत्वा यानेन स्नान मात्र फलं भवत् ॥
तीर्थानुगमन कृत्वा भिक्षाचारी जितेन्द्रियः ।
अपूज्या यत्र पूजयन्ते पूज्य पूजाव्यति क्रमात् ॥
तत्र स्थाने भयोत्पत्तिर्दु भिक्षम् मरणं भयम् ।
प्राप्नुवन्ति महादेवि तीर्थे दश गुणं फलम् ॥

---

(१) भविष्य पुराण । (२) महाभारत (३) महाभारत ।

स्वयं भूते महातीर्थे प्रभासे च महन्तरे।
तस्मिंस्तीर्थे प्रति गृह्य मत' रात्र प्रतिग्रह ॥
प्रतिग्रह निवृत्तस्य यात्रा दशगुणी भवेत्।
तेन दत्तानि दानानि यज्ञैर्देवा सुतर्पिता ॥
येन क्षेत्र समासाद्यनिवृत्ति' परमा कृता।
यस्तु मोहाद्याह्निम क्षेत्रे प्रतिग्रहरुचिर्भवेत् ॥[1]

जो मनुष्य किसी और कार्य जैसे व्यापार राज्य प्रबन्ध अभियोग के कारण तीर्थ पर जाता है और विचार करता है कि चलो स्नान करके पुण्य भी प्राप्त करलें तो उसे तीर्थ स्नान फल तो मिलता है परन्तु तीर्थ फल नहीं मिलता। तीर्थों पर पैदल यात्रा करनी चाहिए, यदि कोई धन के गर्व में या कष्ट के भय से गाड़ी घोड़ा या किसी अन्य सवारी पर बैठकर तीर्थ यात्रा करता है तो उसे भी केवल स्नान फल मिलेगा उसे तीर्थ फल नहीं मिलेगा अत' मिताचरण करके इन्द्रियों को वश में रखते हुए तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। जिस स्थान पर अपूज्य पाखण्डी नीच और नास्तिकों की तो पूजा होती है और देवता गुरु सिद्धों और ईश्वर का निरादर होता है, वहाँ अवश्य दुर्भिक्ष भय और मृत्यु का प्रकोप होता है। हे महादेवी! तीर्थों में स्नान दान और यज्ञ करने से दस गुणा फल मिलता है। परन्तु जो तीर्थों पर जाकर भी संतोष करता है वह सब पुण्य पा लेता है। जो तीर्थ पर जाकर दान नहीं लेता उसकी तीर्थ यात्रा दस गुणा फल देती है।

तीर्थ यात्रा पैदल क्यों ?

पैदल यात्रा करने पर शास्त्रकारों ने इसलिए विशेष जोर दिया क्योंकि तीर्थ यात्रा विचार शोधन के लिए की जाती है। मोटर गाड़ी हवाई जहाज घोड़ा पालकी इत्यादि सवारी के साधन समय साधक तो है, इनमें यात्रा करने वाले का समय तो थोड़ा लगेगा परन्तु यह साधन विचार शोधक नहीं हैं। वहाँ विचार द्वन्द्व है। वहाँ शान्ति का साधन चाहिए। अंग्रेज साहित्यकार का यह कथन बहुत सुन्दर है कि पद यात्रा ही यात्रा का सर्वोत्तम प्रकार है[1]। आयुर्वेद शास्त्र में पद यात्रा की महिमा भरी पड़ी है। आरोग्य शास्त्र में पद यात्रा की प्रशंसा भरी पड़ी है। मनुस्मृति शास्त्र में पद यात्रा की प्रशंसा भरी पड़ी है अत' प्रकृति का आनन्द लूटना है तो पद यात्रा कीजिए। स्वास्थ्य ठीक रखना है तो पद यात्रा कीजिए। ज्ञान प्राप्त करना है तो पद यात्रा कीजिए। देश की असली तस्वीर देखनी है तो पद यात्रा कीजिए। जनता के साथ सम्पर्क होना है तो पदयात्रा कीजिए। प्राचीन युग में मोटर, गाड़ी इत्यादि तो नहीं थीं परन्तु ऊँट, घोड़े इत्यादि थे। लोग उनका प्रयोग भी करते थे और रात भर में सौ दो सौ मील तक निकल जाते थे परन्तु ध्यान योग्य और विचार करने की बात है कि हमारे साधु संन्यासी धर्मोपदेशक, तीर्थ यात्री धर्म गुरु, गुरु

---

(१) कूर्म पुराण। 1 *He travels best, who travels on foot.*

प्रवर्तकों ऋषियों और महात्माओं शंकराचार्य महावीर, बुद्ध कबीर रामानुज चैतन्य महाप्रभु नामदेव और नानक जैसे सन्त समस्त भारत में घूमे और पैदल ही घूमे। यदि वह चाहते तो घोड़े पर भी घूम सकते थे परन्तु उन्होंने त्वरित साधनों का सहारा नहीं लिया क्योंकि वह विचारों का शोधन करना चाहते थे और विचार शोधनार्थ सर्वोत्तम साधन पैदल चलना ही है।

दूर जाने की आवश्यकता नहीं यही देखिए कि जब देश पर सन् १९४६ में हिन्दु मुसलमान दंगों के संकट के बादल छाए तो महात्मा गांधीजी ने नोआखाली और बिहार प्रान्त का पैदल और वह भी इस वृद्धावस्था में भ्रमण किया और इससे भी पहले १९३० ईसवी में गांधीजी ने साबरमती के आश्रम से निकल कर डाण्डी मार्च पदल ही किया था और आज तो गत ग्यारह वर्षों से देश का सबसे बड़ा संत विनोबा भावे, सब यात्रा के साधन होते हुए भी समस्त देश में हजारों मील पैदल घूम घूमकर मानवता का सन्देश दे रहे हैं। फिर सबसे बड़ी एक बात और भी है कि पद यात्रा से देश और उसमें बसने वाले लोगों का अध्ययन अच्छा होता है। उनकी विचार धारा रीति रिवाज भाषा और रहन-सहन सब को समीप से देखने और समझने का अवसर मिलता है। इसलिए शान्ति पूर्वक विचार करने से पता चलेगा कि पद यात्रा बिना चारा नहीं।

नरयाने चाश्वयाने हयादि सहितो रथ।
तीर्थ यात्रा स्व धशक्तानां यान दोषोनुणां न हि॥[1]

यदि कोई अशक्त और अस्वस्थ व्यक्ति पीठ, पालकी रथ और घोड़े पर चढ़कर तीर्थयात्रा करे तो कोई दोष नहीं। ऐसे मनुष्य जो श्रद्धा होने पर भी किसी कारण स्वयं तीर्थ यात्रा नहीं कर सकते हों और अन्य व्यक्ति उनके स्थान पर यात्रा करें तो कोई दोष नहीं।

देवानाञ्च गुरूणाम् च माता पित्रोश्च कामत।
पुण्यद समवाप्नोति तदेवाष्ट गुण फलम्॥
पितर मातरम् तीर्थे भ्रातरं सुहृदं गुरुम्।
यमुद्दिश्य निमज्जेत तद्यशां स लभेत्तु स॥
लभते षोडशां स अपराध मनु गच्छति।
कुशैर्य प्रतिमां कृत्वा तीर्थे वारिणि मज्जयेत्॥
यमुद्दिश्य महादेवि चाष्मांशं लभेत स।[2]

जो अपने पुण्य में से देवता गुरु, माता-पिता को भाग देता है उसका पुण्य आठ गुणा हो जाता है। जो माता-पिता भाया मित्र गुरु और आचार्य के लिए तीर्थस्नान करे तो उसे पुण्य का बराबर मिलता है। जो दूसरों के लिए तीर्थ यात्रा करता है उसे सोलहवां अंश यात्रा पुण्य में से मिलता है। यदि कोई अपने किसी मित्र या आत्मज के नाम से जो तीर्थ पर न हो तीर्थ में स्नान करना चाहे तो अपने उस मित्र की जिसके नाम से स्नान करना है, कुश की मूर्ति बनाकर उसे स्नान करवाए, इस प्रकार वहां उस व्यक्ति को पुण्य लाभ

(१) पद्म पुराण। (२) पद्म पुराण

कुरुक्षेत्र-सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण में दान

यद्ददाति यस्तत्र कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ।
तत्तदेव समाप्नोति नरो जन्मनि जन्मनि ।[१]
रामह्रदे कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते विवस्वति ।
यत्फलं स्वर्ण दानेन तज्ज्ञानोदे दिने दिने ॥
कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्वा स्व शक्तितः ।
सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्ति भाग्भवेत ॥[२]

सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र रामह्रद तीर्थ पर स्वर्ण दान करने से प्रतिदिन भाग वृद्धि होती है। कुरुक्षेत्र में रामतीर्थ पर अपनी शक्ति अनुसार सूर्य ग्रहण के समय विधि पूर्वक स्वर्णदान करने से मनुष्य मोक्ष का भागी होता है।

सर्वस्य च हि दानस्य संख्या वै प्रोच्यते बुधैः ।
चन्द्र सूर्यो परागे तु दान संख्या न विद्यते ॥[३]

बुद्धिमान ऋषियों ने सम्पूर्ण दान की संख्या कही है परन्तु चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय जो दान किया जाता है वह सदा वृद्धि को प्राप्त होता है इसकी संख्या अनन्त है।

सूर्य्य ग्रहेतुयः स्नायाद्यथा दानं यथा विधि ।
स्वर्णं रजतं चापि ब्राह्मणेभ्यो ददाति च ॥[४]

जो सूर्य ग्रहण पर स्नान करके विधिपूर्वक दान करता है। सुपात्र ब्राह्मण को सोने और चाँदी का दान देता है, उसका दान सुफल होता है।

कुरुक्षेत्र और सूर्यग्रहण

बहुत से विद्वानों का मत है कि जब पृथ्वी पर मानव सृष्टि की रचना हुई उस समय सर्वप्रथम कुरुक्षेत्र में सूर्य दर्शन हुए अतः कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण का बड़ा महात्म्य है।[५]

कुरुक्षेत्रे महापुण्यं राहु ग्रस्ते दिवाकरे[६]

सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र सेवन का महा पुण्य है।

अमावास्यां तु तत्रैव राहुग्रस्ते दिवाकरे[७]

अमावस्या को जब सूर्य ग्रहण हो।

यदा सूर्यस्यग्रहणं कालेन भविता क्वचित् ।
सरस्वत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि ॥[८]

सूर्य ग्रहण के समय सरस्वती में स्नान करने वाला स्वर्ग जाता है।

सन्निहित्यां विशेषेण राहुग्रस्ते दिवाकरे[९]

सूर्य ग्रहण पर सन्निहित तीर्थ में स्नान का विशेष महात्म्य है।

---

(१) भारतीय पुराण श्लो० १५६ । (२) स्कन्द पुराण केदार खण्ड ।
(३) वायु पुराण । (४) रेवा खण्ड । (५) मार्कण्डेय पुराण अ० ३० श्लो० ३७, ८० लिङ्ग पुराण । ५८ । (६) मत्स्य पुराण १६२।११ पद्म पुराण स्वर्ग खण्ड ११।१२ । (७) महाभारत वन पर्व अ० ८३ श्लो० १९६ । (८) वामन पुराण अ० ३४ श्लो० ५ काशी खण्ड ध्यान शान्ति महात्म्य ब्रह्म पुराण ।
(९) विष्णु धर्मोत्तर ।

कुरुक्षेत्र में श्राद्ध

श्राद्धस्य पूजितो देशो गया गंगा सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं प्रयाग च नैमिष पुष्कर तथा ॥[1]

श्राद्ध के लिए गया गंगा सरस्वती कुरुक्षेत्र प्रयाग नैमिष और पुष्कर पूजित हैं।

पुष्करे चाक्षयं श्राद्ध जपहोमतपांसि च।
महोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरु जांगले ॥[2]

पुष्कर तीर्थ में किया हुआ श्राद्ध जप होम और तप अक्षय फल देने वाले होते हैं। ऐसे ही महोदधि प्रयाग काशी और कुरुक्षेत्र में भी श्राद्ध करने से अक्षय फल मिलता है।

कालञ्जरे दशार्णा यां नैमिष कुरुजांगले।
वाराणस्यां नगर्यां वै देयं श्राद्ध प्रयत्नतः ॥
गत्वा चैतानि य कुर्यात्फलमक्षयमेव च।
जप होम तपोध्यान यत्किंचित् सुकृत भवेत्।[3]

कालंजर देश दशार्णा नदी नैमिषारण्य कुरुक्षेत्र और काशी में प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध करें। इन तीर्थों में जो स्नान ध्यान जप होम दान भोजनादि ब्राह्मणों को कराता है और समस्त कुरुक्षेत्र में श्राद्ध करता है उसका अक्षय फल होता है। पितर फिर श्राद्ध का इच्छा नहीं करते क्योंकि वह फिर स्वर्ग में चले जाते हैं।

पुन: सन्निहित्यां वै कुरुक्षेत्रे विशेषतः।
अभ्यर्चयेच्च पितृ स्तत्र स पुनस्त्व मृणो भवेत्।
वाराणस्यां प्रभासे च कुरुक्षेत्रे समत तः।
संनिहित्यां विशेषेण राहु ग्रस्ते दिवा करे ॥[4]

जो कुरुक्षेत्र के सन्निहित तीर्थ में श्राद्ध तर्पण मन से करता है वह पुन पितृ ऋण से उऋण हो जाता है। काशी भी प्रभास क्षेत्र कुरुक्षेत्र तथा सन्निहित तीर्थ में सूर्य ग्रहण के समय विशेष फल है।

श्राद्ध कृत्वा समाप्नोति राजसूय शत नरः।
अश्वमेध सहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ॥
स्नात्वा एव तदाप्नोति कृत्वा श्राद्ध च मानवः।
सर्वान् देव लोकेषु कामचारी विराजते ॥[5]

...ाद्ध तर्पण और देवताओं का पूजन करके जो पितरों को सन्तुष्ट करता है वह सौ राजसूय ...ज्ञ और हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। इन तीर्थों में स्नान और श्राद्ध करने ...था मनुष्य विमान में बैठकर सम्पूर्ण देव लोकों के आनन्द को भोगता है।

पद्मवर्णेन यानेन किं किणीजालमालिना।
गन्धर्वादिगणाढ्येन स वेणुमुरजा विना ॥
दिव्यस्वैवादत्रयुक्तेन कामगेन यथासुखम्।
अमृतसप्तक यावत् क्रीडत्यप्सरसां गणे ॥

---

(१) मत्स्य पुराण। (२) वामन पुराण। (३) मत्स्य पुराण। (४) विष्णु धर्मोत्तर। (५) विष्णु धर्मोत्तर।

मासि मासि समायान्ति पुण्येन महतान्विता ।
सन्निहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥
अश्वमेधशतं तेन तत्रष्टं शाश्वतं भवेत् ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि अन्तरिक्षचराणि च ॥
नद्यो ह्रदास्तडागाश्च सर्वप्रस्रवणानि च ।
उदपानानि वाप्यश्च तीर्थान्यायतनानि च ।
निःसंशयममावस्यां समेष्यन्ति नराधिप ।
मासि-मासि नरव्याघ्र संनिहत्यां न संशय ॥
तीर्थसंनिहता देव सन्निहत्येति विश्रुता ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोके महीयते ॥
अमावस्यां तत्रैव राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
य श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्य फलं शृणु ॥
अश्वमेधसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत् फलम् ।
स्नात एव समाप्नोति कृत्वा श्राद्धश्च मानव ॥
यत् किंचिद् दुष्कृतं कर्म स्त्रिया वा पुरुषे वा ।
स्नातमात्रस्य तत् सर्वं नश्यते नात्र संशयः ॥[1]

हे धर्म विशेषज्ञ ! यहाँ से सन्निहित तीर्थ को जावें जहाँ ब्रह्मादि देवता तपस्या के धनी ऋषि महर्षि महापुण्य युक्त होने पर भी प्रतिमास आते हैं । सूर्य्य के राहुग्रस्त से आच्छादित होने पर सन्निहित तीर्थ में स्नानाचमन करने वाला पुरुष महापुण्य सौ अश्वमेध यज्ञ कर चुकता है । पृथ्वी और स्वर्ग में जितने तीर्थ हैं महीने-महीने अमावस्या को संनिहित में आते हैं । अमावस्या को सनिहित में स्नान करके पुरुष स्वर्ग में पूजित होता है । अमावस्या में तमोरूप राहु से सूर्य्य भगवान् के आच्छादित होने पर सनिहित तीर्थ में श्राद्ध करने वाले मनुष्य को विधि सम्पन्न एक हजार अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है सनिहित में स्नान करने से प्राणी के सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं ।

ब्रह्मवेदि कुरुक्षेत्रं पुण्य सन्निहितं सर ।
सेवमाना नरा नित्य प्राप्नुवन्ति परं पदम् ।[2]

ब्रह्मवेदि कुरुक्षेत्र में सन्निहित सरोवर है जो मनुष्य उसमें प्रतिदिन स्नान करता है उसे परम पद प्राप्त होता है ।

चार ईश्वर

कुरुक्षेत्र में चार ईश्वर हैं । कालेश्वर, ज्योतिश्वर, स्थाणुश्वर और सर्वेश्वर ।

चार कूप

कुरुक्षेत्र में चार कूप हैं । देवीकूप चन्द्रकूप रुद्रकूप और विष्णु कूप ।

---

(१) महाभारत वन पर्व अध्याय ८३ श्लोक १८१ से १९० तक ।
(२) वामन पुराण अध्याय २४ श्लोक १९ ।

कुरुक्षेत्र : एक विवाद

कहाँ और कब ?

आधुनिक युग खोज और छानबीन का युग है। श्रद्धा का स्थान तर्क और बुद्धि ने ले लिया है। जन साधारण की तो बात ही क्या विद्वान भी ऐसा सोच सकते हैं कि क्या यह धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र जिसकी महिमा और महात्म्य का वर्णन धर्मग्रन्थों और शास्त्रकारों ने इतना बढ़ा-चढ़ा कर किया है वही स्थान है जहाँ कि आधुनिक कुरुक्षेत्र है ? अथवा यह स्थान यह न होकर कोई और स्थान था ? अतः इस शंका का समाधान आवश्यक है। हड़प्पा मोहनजोदड़ो और रोपड़ के स्थानों को खोदकर और वहाँ पर पाए गए भग्नावशेषों खण्डहरों की पक्की ईंटों गृह-निर्माण शैली और अन्य सामग्रियों से उनकी प्राचीनता का अनुमान कर लेना पुरातत्त्व विभाग वालों के लिए इतना कठिन कार्य नहीं जितना कि यह निश्चित करना कि कुरुक्षेत्र कहाँ है ? क्योंकि प्रथम तो कुरुक्षेत्र किसी नगर, राजधानी अथवा किले का नाम नहीं है। दूसरे किसी एक स्थान को कुरुक्षेत्र नहीं कहते बल्कि कुरुक्षेत्र नाम है एक प्रदेश का जो सरस्वती और दृषद्वती दोनों नदियों के बीच ४८ कोस तक फैला हुआ है। कुरुक्षेत्र में ऋषियों के अनेक आश्रम थे, जो न तो पक्की ईंटों से बने थे न पत्थरों द्वारा निर्मित थे और न ही उनमें कोई गृह निर्माण की कला थी बल्कि घास-फूस की साधारण सी कुटियाएँ मात्र थीं। अतः यदि ४८ कोस की भूमि को गहरा खोदा भी जाए तो मिट्टी और रेत के अतिरिक्त और क्या मिल सकता है ? अतः कुरुक्षेत्र कहाँ है ? यह केवल उस भौगोलिक कसौटी पर पाव रत्ती पूरा नहीं उतरता। कुछ चिह्न हैं जो मिलते तो हैं परन्तु धुँधलाए हुए हैं और अन्य कुछ चिह्न तो पूर्णतया मिट ही गए हैं। जैसे सरस्वती नदी तो जैसी कैसी है भी, परन्तु दृषद्वती नदी का कोई भी चिह्न इस समय नहीं मिलता। फिर भी थोड़े बहुत चिह्न जिनका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे उसी प्रदेश में पाए जाते हैं जिसे कि आज का कुरुक्षेत्र कहते हैं। परम्पराएँ और अनुमान पूर्णतया तो ठीक नहीं होते परन्तु किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए परम्पराओं और अनुमान का सहारा लेने में कोई दोष नहीं। अतः परम्पराओं और अनुमान के दृष्टिकोण से भी यही सम्भव है कि जहाँ आज के दिन कुरुक्षेत्र है, वहीं यह प्राचीन कुरुक्षेत्र भी रहा होगा। इसके अतिरिक्त अभी भारत देश के किसी अन्य प्रदेश ने यह दावा नहीं किया कि ये स्थान कुरुक्षेत्र नहीं है। इसलिए यह सिद्ध है कि आज जिस प्रदेश

को कुरुक्षेत्र कहते हैं यह वही धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र है जिसका वर्णन शास्त्रों में है। कुरुक्षेत्र का भूगोल यह है कि—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥
तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥[1]

सरस्वती और दृषद्वती दोनों नदियों के बीच भूमि को पुण्यदेश ब्रह्मावर्त कहते हैं। इस ब्रह्मावर्त देश में जो आचार विचार वर्णाश्रमों के लोग व्यवहार करते हैं वही सदाचार है। इन देशों में पैदा हुए ब्राह्मणों के उपदेश से समस्त पृथ्वी के मनुष्य अपने-अपने चरित्रों को सुधारें और उनसे शिक्षा लें।

विनशनं तु तत्क्षेत्रं यत्र नष्टा सरस्वती ।[2]

विनशन (कुरुक्षेत्र) उस क्षेत्र का नाम है जहाँ सरस्वती नष्ट अथवा अन्तर्ध्यान हो जाती है।

दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च ।
ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ॥[3]

सरस्वती के दक्षिण और दृषद्वती के उत्तर में कुरुक्षेत्र है जो लोग कुरुक्षेत्र में बसते हैं वह मानो स्वर्ग में बसते हैं।

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां च मचक्रुकस्य ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥
समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम् ।
आसमन्ताद्योजनानि पञ्चपञ्च च सर्वतः ॥
गते शुक्रेऽपि नृपतिः रक्षत्यहनि हरिः सुक ।
कथयिते मरुसमन्तात्तस्य को या मही पतिः ॥[4]

तरन्तुक अरन्तुक दोनों द्वारपाल यक्षों की मध्यभूमि जामदग्न्य राम के पाँचों ह्रदों और मचक्रुक यक्ष के मध्य की भूमि को कुरुक्षेत्र समन्त पञ्चक और प्रजापति ब्रह्मा की उत्तरवेदी कहा जाता है।

तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः ।
यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम् ॥
विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशं राक्षसेश्वरम् ।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम् ॥
एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम् ।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः ॥

(१) मनुस्मृति अध्या० २ श्लोक १७ १८ २ । (२) महाभारत । (३) महाभारत वन पर्व अ० ८३ श्लोक ४ । (४) वामन पुराण—महाभारत ।

अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां निवारयन्तीह सुदुष्कृतान्वै ।
स्नातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपास्तस्मान्नयस्यते वीर चराचराणाम् ॥[१]

कुरुक्षेत्र के ईशान (पूर्व उत्तर) कोण पर तरन्तुक यक्ष है । कुरुक्षेत्र के अग्निकोण (पूर्व दक्षिण) सीमा पर अरन्तुक यक्ष है । कुरुक्षेत्र नैऋर्त कोण (पश्चिम दक्षिण) पर राम ह्रद है । तरन्तुक यक्ष से सरस्वती तट पर चलकर चालीस कोस पर वायु कोण (उत्तर पश्चिम) पर द्वितीय अरन्तुक यक्ष है । उत्तर सीमा में अरन्तुक यक्ष से कुछ ही कम चालीस कोस पर रामह्रद है । दक्षिण सीमा रामह्रद से उत्तर भाग में चालीस कोस से कुछ अधिक दूरी पर अरन्तुक यक्ष है । प्रत्येक दिशा में कुरुक्षेत्र की रक्षार्थ भगवान् विष्णु ने चन्दन यक्ष, पन्नगराज वासुकि विद्याधर, शङ्कुकर्ण राक्षसराज सुकेशी महाराज प्रजापति और महादेव नाम की अग्नि को नियुक्त किया है । यह सब अपने सेवकों सहित कुरुक्षेत्र की रक्षा करते हैं । महाघोर रूप आठ सहस्र धनुर्धर कुरुक्षेत्र में दुष्कर्मा पापियों को स्थिर नहीं होने देते और उन्हें इस क्षेत्र से बाहर निकाल देते हैं ।

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं ।
रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च ॥
एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं ।
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥[२]

तरन्तुक और अरन्तुक के तथा रामह्रद और मचक्रुक के बीच का जो भूभाग है वही कुरुक्षेत्र एवं समन्तपञ्चक है उसे ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी कहते हैं ।

(१) वामन पुराण अ० २२ श्लोक ४० से ४२ । (२) महाभारत वन पर्व, तीर्थयात्रा पर्व अध्याय ८३ श्लोक २०८ ।

महाभारत का कुरुक्षेत्र

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र उत्कट समरक्षेत्र के रूप में परिणत हो गया। जो सुपवित्र भूमि प्राचीन काल में महर्षि और राजर्षियों की यज्ञस्थली के रूप में व्यवहृत होती थी। जहाँ 'आत्मनो मोक्षार्थं जगता हिताय च" समस्त पार्थिव सम्पत्ति को विश्व प्राण विष्णु की सेवा में उत्सर्ग करके आर्य सन्तान अपने मानवत्व की पूर्णता सम्पादन का व्रत ग्रहण करते थे। उसी पुण्यभूमि में उन्हीं के वंशज लोभ और द्वेष स्वार्थपरता और पर श्री कातरता साम्राज्य लिप्सा और भोगवासना की प्रेरणा से आत्म विस्मृत होकर जल स्थल और अन्तरिक्ष को भस्मीभूत कर डालने वाले समरानल में आत्माहुति देने के लिए ढेर के ढेर भिन्न-विभिन्न विध्वंसी मारणास्त्रों को लेकर उद्यत हुए। विशाल भारत की प्रबल क्षात्र शक्ति आसुरी भावों से भावित और दम्भ मोह मद से युक्त होकर मानों आप ही अपना विनाश करने को तैयार हुई। पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना के प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न हुए। सात सेनाध्यक्ष द्रुपद विराट शिखंडी धृष्टद्युम्न सात्यकि चेकितान और भीमसेन हुए। कौरव की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के प्रधान सेनापति पितामह भीष्म हुए। ग्यारह सेनाध्यक्ष कृपाचार्य द्रोणाचार्य शल्य जयद्रथ सुदक्षिण कृतवर्मा अश्वत्थामा कर्ण शकुनि भूरिश्रवा और बाह्लीक हुए। कुरुक्षेत्र के विराट क्षेत्र में पांडवों ने पश्चिमी कोण पर पड़ाव डाला उनका मुख पूर्व की ओर था और कौरवों ने पूर्वी कोण पर पड़ाव डाला उनका मुख पश्चिम की ओर था।

युद्ध के प्रथम दिन भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश दिया। दसवें दिन शिखंडी ने गाण्डीवधारी अर्जुन के सहारे बाणों से भीष्म को आहत किया। अनन्तर द्रोणाचार्य कौरवों के सेनापति हुए और बची हुई नौ अक्षौहिणी सेना से युक्त हो युद्ध करने लगे। कृपाचार्य और मुख्य क्षत्रियगण उनकी रक्षार्थ नियुक्त हुए। पाँच दिन द्रोणाचार्य युद्ध करके धृष्टद्युम्न के हाथ से मारे गए। तब सोलहवें दिन कर्ण कौरवों की बची हुई पाँच अक्षौहिणी सेना के सेनापति बने। पांडवों की तीन अक्षौहिणी सेना के अर्जुन सेनापति हुए। दूसरे दिन अर्जुन ने कर्ण को मार डाला। तब कौरवों ने मद्रराज शल्य को तीन अक्षौहिणी सेना का सेनापति बनाया। राजा युधिष्ठिर ने आधे दिन तक संग्राम करके शल्य को मार दिया। सम्पूर्ण कौरव सेना नष्ट हो जाने पर दुर्योधन ने भागकर द्वैपायन तालाब में निवास किया। खोज लगने पर पांडव-गण ने द्वैपायन तालाब पर जाकर दुर्योधन से गदा युद्ध करके उसे भीम ने मार डाला। अनन्तर अश्वत्थामा ने रात्रि के समय पांडवों की सेना का विनाश किया।

पांडवों की ओर से कृष्ण सात्यकि और पांच पांडव यही सात व्यक्ति बचे। कौरवों की ओर अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा यही तीन बचे। इस प्रकार यह महाभारत युद्ध अठारह दिनों में समाप्त हुआ। धृतराष्ट्र गांधारी कुन्ती और कुरुकुल की स्त्रियां रोती हुई कुरुक्षेत्र पहुंची और मृतकों का प्रेत कर्म किया।

तीसरे दिन पांडव और यादव कुरुक्षेत्र में भीष्म जी के पास आए। भीष्म जी ने युधिष्ठिर को शान्तिपर्व में संकलित सम्पूर्ण धर्मशास्त्र सुनाया। जब सूर्य उत्तरायण में प्रवृत्त हुआ तब युधिष्ठिर धृतराष्ट्र गांधारी कुन्ती अर्जुन भीम, नकुल सहदेव कृष्ण विदुर युयुत्सु, सात्यकि इत्यादि कुरुक्षेत्र में भीष्म जी के पास फिर आए उस समय भीष्म जी को तीक्ष्ण तीरों के शरशय्या पर शयन करते हुए ५८ रात्रियां बीत गई थीं। चन्द्रमास का शुक्ल पक्ष था। मास के तीन भाग शेष थे क्योंकि माघ का अन्तिम दिवस अमावस्या था इस प्रकार माघ सुदी अष्टमी के दिन मास का तीन भाग शेष था। भीष्म जी ने युधिष्ठिर को धर्मउपदेश देकर कृष्ण जी की स्तुति की और प्राण त्याग दिए।

कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध क्यों हुआ ?

कुरुक्षेत्र में ही महाभारत युद्ध क्यों हुआ? यह युद्ध भारत देश के किसी और भाग में क्यों नहीं हो गया? यदि युद्ध के लिए खुले लम्बे चौड़े मैदान की आवश्यकता थी तो ऐसे मैदान इस भारत देश में अनेक थे, फिर वहीं युद्ध न होकर ऐसी क्या विशेष बात कुरुक्षेत्र भूमि में थी कि वहां युद्ध न होकर यहां लड़ा गया? रहा यह तर्क कि कुरुक्षेत्र का मैदान हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ के समीप था इसलिए यहां युद्ध हुआ तो मैदान तो प्रयागराज और मध्य प्रदेश की ओर भी था और हस्तिनापुर व इन्द्रप्रस्थ की बगल में ही था परन्तु उधर न जाकर युद्ध की इच्छा मन में लिए कौरव और पांडव कुरुक्षेत्र में ही क्यों आए? इस प्रश्न के दो उत्तर हैं। एक तो यह जो शास्त्रों से अनभिज्ञ लोग देते हैं कि कुरुक्षेत्र की भूमि ऐसी है कि यहां किसी को किसी से प्रेम नहीं है अथवा यह भूमि नरक है। यहां कठोर हृदय के लोग बसते हैं, इन लोगों का कहना है कि जब महाभारत युद्ध होना निश्चित हो गया तो भगवान् कृष्ण ने विचार किया कि भाइयों से भाइयों का युद्ध है अतः युद्ध-स्थल कोई ऐसा स्थान होना चाहिए जहां भाई को भाई के प्रेम का ध्यान न आए। खोजते खोजते जब वह कुरुक्षेत्र आए तो उन्होंने देखा कि एक किसान अपने खेत की टूटी मेड़ को जिससे कि जल निकल कर बह रहा था ठीक करने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु जब बहुत प्रयत्न के पश्चात् भी मेड़ ठीक न हो हुई और जल का बहना बन्द नहीं हुआ तब उसने पास खड़े अपने पुत्र का सिर काटकर मेड़ ठीक कर दी और आराम से बैठकर भोजन करने लगा। यह देखकर भगवान् कृष्ण ने निश्चित किया कि यही स्थान युद्धार्थ उपयुक्त है क्योंकि यहां पिता को पुत्र से भी स्नेह नहीं। इसीलिए कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध हुआ। यह कहानी किसी शास्त्र का लेख नहीं बल्कि कल्पित और मन गढ़न्त है।

इतिहास साक्षी है कि यह अर्जुन जिसने द्रौपदी स्वयम्बर पर कर्ण और दुर्योधनादि से संग्राम किया जिसने विराट की गायों के हरण होने पर अपने तीखे बाणों

द्वारा कौरव दल को घेर जाना था वहीं अर्जुन युद्ध की इच्छा लिए गाण्डीव टंकारता हुआ कुरुक्षेत्र आया और इस युद्ध-भूमि की रज को छूकर प्रतिज्ञा की कि न तो युद्ध से भागूँगा और न ही दीनता दिखाऊँगा। वह जानता था कि उसे अपने सम्बन्धियों से युद्ध करना है। फिर भी उसने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की—

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥[1]

हे कृष्ण ! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा करिये। परन्तु जब उसके सामने उसके सम्बन्धियों के मुख आए तो इस कुरुक्षेत्र में उसके मन में निर्दयता नहीं आई, वैरभाव उत्पन्न होने की अपेक्षा उसे मोह हो गया और वह चिल्ला उठा—

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव,
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥[2]

महानुभाव गुरुजनों को न मार कर इस लोक में भिक्षान्न भोजन भोगना कल्याण कारक है। क्योंकि गुरुजनों को मारकर भी लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और काम रूप भोगों को ही तो भोगूँगा।

इस पर भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश देकर उसका मोह नष्ट किया। तब कहीं अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हुआ और उसने भगवान् कृष्ण से कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥[3]

हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है इसलिए मैं संशय रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञापालन करूँगा। अब यदि किसान की कहानी सत्य होती तो न तो अर्जुन को कुरुक्षेत्र में मोह होता और न ही गीतोपदेश की आवश्यकता होती। अर्जुन इन्द्रप्रस्थ से लड़ने की इच्छा लिए, मन में वैरभाव संजोए कुरुक्षेत्र में आया परन्तु कुरुक्षेत्र में उसका वैरभाव नष्ट हो गया और उसे अपने सम्बन्धियों से मोह हो गया। इसलिए किसान की कहानी मिथ्या और निराधार है। सत्य इससे उतना ही दूर है जितना पृथ्वी से आकाश।

कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध होने का कारण महाभारत में बहुत सुन्दर ढंग से दिया गया है—

समन्त पञ्चकं क्षेत्रमितो यामो विशांपते ।
प्रथितोत्तर वेदिस्तु लोके कर्तुं प्रजापतेः ॥
तस्मिन्देशे पुण्यतमे त्रैलोक्ये च सनातने ।
संग्रामे निधनं प्राप्य ध्रुवं स्वर्गो भविष्यति ॥[4]

---

(१) गीता अ० १ श्लोक २१। (२) गीता अ० २ श्लोक ५। (३) गीता अध्याय १८ श्लोक ७३।
(४) महाभारत।

हे राजन् युधिष्ठिर ! हम लोग अब धीमातिधीश समस्त पञ्चक (कुरुक्षेत्र) को प्रस्थान करें क्योंकि यह क्षेत्र संसार के आदि कारण सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा की उत्तरवेदी के नाम से प्रसिद्ध है। पुण्यादि पुण्य समस्त भूमि आकाश और स्वर्ग से भी पूजित है। समस्तन क्षेत्र समन्त पञ्चक में युद्ध में मरे लोग अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त करेंगे।

> पांसवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः ।
> महादुष्कृतकर्माणं प्रापयन्ति परं पदम् ॥[1]

कुरुक्षेत्र में वायु के वेग से उड़ी हुई धूल भी यदि शरीर से स्पर्श कर जाये तो बुरे कर्मों के पाप नष्ट होकर मनुष्य को मोक्ष मिल जाता है।

> दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि वसाम्यहम् ।
> एवं य सततं ब्रूयात्सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥[2]

जो दूर देशों में बैठा हुआ कुरुक्षेत्र में जाकर वास करने के लिए कहता है वह सब पापों से छूट जाता है।

> मरा ये मुक्ति मामस्य सिद्धाश्रमपरायणाः ।
> सेव्य पांसु प्रयत्नेन प्रयाता परम पदम् ॥[3]

जो प्राणी मुक्ति चाहने वाले हैं वह यत्न से कुरुक्षेत्र की धूलि का सेवन करके परम गति को प्राप्त होते हैं।

> पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
> त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ॥
> पांसवोऽपि कुरुक्षेत्राद् वायुना समुदीरिताः ।
> अपि दुष्कृत कर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥
> कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
> अप्येकां वाचमुत्सृज्य सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥[4]

भूमण्डल के निवासियों के लिए तीर्थ नैमिष और अन्तरिक्ष निवासियों के लिए उत्तम तीर्थ पुष्कर है परन्तु कुरुक्षेत्र तीनों लोकों के निवासियों के लिए विशिष्ट तीर्थ है। कुरुक्षेत्र में वायु द्वारा उड़ाई हुई धूल भी पापियों को परमगति देती है। मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा वहाँ निवास करूँगा। केवल इतना ही कह देने से मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है।

कुरुक्षेत्र के विषय में महर्षि पुलस्त्य ने धर्मराज युधिष्ठिर से जिस महिमा का वर्णन किया है वह महाभारत में इस प्रकार है।

> ततो गच्छेत राजेन्द्र कुरुक्षेत्रमभिष्टुतम् ।
> पापेभ्यो यत्र मुच्यन्ते दर्शनात् सर्वजन्तवः ॥[5]

राजेन्द्र ! तदनन्तर ऋषियों द्वारा प्रशंसित कुरुक्षेत्र की यात्रा करें जिसके दर्शनमात्र से ही सारे पाप मुक्त हो जाते हैं।

---

(१) वामन पुराण अध्याय ५२ श्लोक १२। (२) वामन पुराण अ० ११ श्लोक ( )
(३) महाभारत। (४) महाभारत वन पर्व अध्याय ८३ श्लोक २०२, २०३, २०४। (५) महाभारत वन पर्व अध्याय ८३।

तत्र मासं वसेद् धीर सरस्वत्यां युधिष्ठिर ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्ध चारणाः ॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा पन्नगाश्च महीपते ।
ब्रह्मक्षेत्रं महापुण्यमभिगच्छन्ति भारत् ॥[१]

हे युधिष्ठिर ! वहाँ सरस्वती के तट पर धीर पुरुष एक मास तक निवास करे, क्योंकि महाराज इस महा पुण्यदायक ब्रह्मक्षेत्र में ब्रह्मादि देव ऋषि, सिद्ध चारण गन्धर्व, अप्सरा यक्ष और नाग निवास करते हैं ।

मनसाप्यभिकामस्य कुरुक्षेत्रं युधिष्ठिर ।
पापानि विप्रणश्यन्ति ब्रह्मलोकंच गच्छति ।[१]

हे युधिष्ठिर ! जो प्राणी कुरुक्षेत्र में जाने की मन से भी अभिलाषा करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मलोक को जाता है ।

गत्वा हि श्रद्धया युक्तः कुरुक्षेत्रं कुरूद्वह ।
फलं प्राप्नोति च तदा राजसूयाश्वमेधयो ॥[१]

हे कुरुवंश श्रेष्ठ ! जो कुरुक्षेत्र में श्रद्धा सहित यात्रा करता है वह राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ।

ततो मचक्रुकं नाम द्वारपालं महाबलम् ।
यक्षं समभिवाद्यैव गोसहस्रफलं लभेत ॥[१]

तदनन्तर वहाँ मचक्रुक नाम के महाबली यक्ष द्वारपाल को नमस्कार करने मात्र से एक हजार गौएँ दान करने का फल प्राप्त होता है ।

ततो गच्छेत् धर्मज्ञ विष्णो स्थानमनुत्तमम् ।
सततं नाम राजेन्द्र यत्र संनिहितो हरिः ॥[१]

हे धर्मज्ञ राजेन्द्र ! तत्पश्चात् विष्णु सतत नाम सन्निहित तीर्थ को जायें जहाँ स्वयं हरि नित्य विद्यमान रहते हैं ।

तत्र स्नात्वा च नत्वा च त्रिलोक प्रभवं हरिम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥[१]

सन्निहित तीर्थ में स्नान करने और त्रिलोकी के उत्पन्न कर्ता भगवान् हरि को नमस्कार करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है और प्राणी विष्णु लोक को जाता है ।

ततो रामह्रदान् गच्छेत् तीर्थसेवी समाहित ।
तेषु-तेषु च स्नात्वा पितृन् सन्तर्प्य पिष्यति ॥
पितरस्तस्य वै प्रीतादास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ।
ईप्सितञ्च मनः कामं स्वर्ग लोकञ्च शाश्वतम् ॥[१]

इसके पश्चात् तीर्थ सेवी रामह्रद कुशील तीर्थ को जावे, इसमें स्नान करके जो पितरों को

---

(१) महाभारत वन पर्व अ० ८३ ।

दर्शन देता उसके पितर तृप्त होकर भूमि पर दुर्लभ मनोवांछित कामनाओं को पूर्ण करके तथा सदा के लिए स्वर्ग में रहेंगे।

कुरुक्षेत्र समं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
तत्र द्वादश यात्रास्तु कृत्वा भूयो न जन्मभाक् ॥[1]

कुरुक्षेत्र तीर्थ के समान कोई उत्तम तीर्थ न हो है और न ही होगा। जो इस भूमि की बारह बार यात्रा कर लेता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गया विशिष्यते ॥[2]

सत्ययुग में नैमिष तीर्थ महा पुण्य है त्रेता युग में पुष्कर, द्वापर युग में कुरुक्षेत्र और कलि युग में गया विशेष तीर्थ है।

आद्यं ब्रह्मसरं पुण्यं ततो नागह्रदं स्मृतम्।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्र ततः स्मृतम् ॥[3]

कुरुक्षेत्र का आदि नाम ब्रह्मावर्त था फिर नागह्रद और तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र होगा।

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयो।
सूर्योपराग सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥
तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्ता देव सर्वत।
समन्तपञ्चक क्षेत्रं ययु श्रेयोविधित्सया ॥
नि क्षत्रियां महीं कुर्वन् राम शस्त्रभृतां वरः।
नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥
ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥
लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथा पोऽघापनुत्तये ॥
महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारती प्रजा।
वृष्णयश्च तथा क्रूरवसुदेवाहुकादय ॥[4]

श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि इसी प्रकार भगवान् कृष्ण और बलरामजी द्वारका में निवास कर रहे थे। एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगा जैसा कि प्रलय के समय लगा करता है। मनुष्यों को ज्योतिषियों द्वारा उस ग्रहण का पता पहले से ही चल गया था। इसलिए सब लोग अपने अपने कल्याण के उद्देश्य से पुण्यादि उपार्जन करने के लिए समन्तपञ्चक तीर्थ कुरुक्षेत्र में आए। समन्तपञ्चक क्षेत्र वह है, जहाँ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम जी ने सारी पृथ्वी को क्षत्रियहीन करके राजाओं के रुधिर से पाँच बड़े-बड़े कुण्ड बना दिए थे। जैसे कोई साधारण मनुष्य अपने पाप की निवृत्ति के लिए प्रायश्चित करता है, वैसे ही सर्व शक्तिमान् भगवान् परशुराम ने अपने साथ कर्म का कुछ सम्बन्ध न होने पर भी लोक मर्यादा की रक्षार्थ वहीं पर यज्ञ किया था। इस महान् तीर्थ यात्रा के अवसर पर

---

(१) वामन पुराण। (२) कूर्म पुराण अ० ३० श्लोक ४०। (३) वामन पुराण अ० २२ श्लोक १४।
(४) श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धोऽध्याय त्र्यशीतितम श्लोक १ से ३ तक।

भारतवर्ष के सभी प्रान्तों की जनता कुरुक्षेत्र आई थी। उनमें अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े बूढ़े भी अपने-अपने पापों का नाश करने के लिए कुरुक्षेत्र आये थे।

इस सूर्यग्रहण के पर्व पर भगवान् कृष्ण से कुरुक्षेत्र में नन्द बाबा यशोदा और गोपियों की भेंट हुई थी।

महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

महाभारत युद्ध के पश्चात् व्यास जी और भगवान् कृष्ण के समझाने पर राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर आए और भगवान् कृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख में जल भर कर धर्मराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक किया। गान्धारी धृतराष्ट्र और कुन्ती तपस्या के लिए कुरुक्षेत्र में आ गए। धृतराष्ट्र से कुरुक्षेत्र में मिलने के लिए पाण्डव परिवार सहित कुरुक्षेत्र आए। बलराम और भगवान् कृष्ण ने यादवों के संहार हो जाने के पश्चात् परम धाम को गमन किया। भगवान् कृष्ण के परमधाम गमन के पश्चात् पाण्डवों का राज कार्य से मन उचाट हो गया महाराज युधिष्ठिर ने युयुत्सु को सम्पूर्ण राज्य की देखभाल का भार सौंप दिया और अपने राज्यसिंहासन पर अभिमन्यु पुत्र परीक्षित् का अभिषेक करके हिमालय चले गए। राजा परीक्षित् ने बहुकाल तक राज्य किया शास्त्रानुसार कलियुग राजा परीक्षित् के राज्य काल में आया।

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेऽशृणोत्
कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः
शरासनं संयुग शौण्डिराददे ॥[1]

जिस समय राजा परीक्षित् कुरुजाङ्गल देश में सम्राट् के रूप में निवास कर रहे थे उस समय उन्होंने सुना कि मेरी सेना द्वारा सुरक्षित साम्राज्य में कलियुग का प्रवेश हो गया है। इस समाचार से उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ परन्तु यह सोचकर कि युद्ध करने का अवसर मिला वे उतने दुःखी नहीं हुए। तत्पश्चात् युद्धवीर परीक्षित् ने धनुष हाथ में ले लिया।

राजा परीक्षित् का राज्य सरस्वती से गंगा तक फैला हुआ था। उन दिनों गान्धार में नागों का राज्य था। ऐसा जान पड़ता है कि महाभारत युद्ध के कारण पुरुओं की शक्ति क्षीण हो गई तो नागों के राजा तक्षक ने इस कमजोरी का लाभ उठाकर हस्तिनापुर पर आक्रमण कर दिया। और युद्ध में राजा परीक्षित् हस्तिनापुर को बचाते हुए मारे गए। अपने पिता परीक्षित् का प्रतिशोध लेने के लिए उनके पुत्र जनमेजय ने तक्षशिला पर आक्रमण करके नागों को मार दिया। आस्तीक ने बीच में पड़कर नागों का वध रोका और इस प्रकार तक्षक नागराज के प्राणों की रक्षा हुई। जनमेजय के पश्चात् उसके पुत्र शतानीक ने राज्य किया। राजा शतानीक के पश्चात् उसका पुत्र अश्वमेधदत्त राज्य गद्दी पर बैठा। राजा अश्वमेधदत्त के स्वर्गारोहण होने पर उनके पुत्र अधीमकृष्ण सरस्वती और गंगा के बीच

(१) श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध षोडशोऽध्याय श्लोक १ ।

के प्रदेश के राजा हुए। राजा अधीम कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नेमिचक्र राजा बना। राजा नेमिचक्र के राज्य काल में कुरुराज्य पर घोर संकट आए और उनकी राजधानी हस्तिनापुर गंगा के जल में बह गई।[1] इस प्रकार पुराणों में राजा [illegible] के पश्चात् राजा क्षेमक जो इस वंश का अन्तिम राजा था तक तेईस राजाओं का वर्णन आया है।[2] तद् पश्चात् यह वंशावली मगध राज महा पद्म तक चलती है।

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लङ्घित शासनः।
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः॥
तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः।
य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः॥
नव नन्दान् द्विज कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ॥
स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति।
तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चा शोक वर्धन॥[3]

महा पद्म पृथ्वी का एक छत्र शासक होगा। उसके शासन का उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकेगा। क्षत्रियों के विनाशार्थ यह दूसरा परशुराम होगा। उसके सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे। वे सभी राजा होंगे और सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। कौटिल्य वात्स्यायन तथा चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण विश्वविख्यात नन्द और सुमाल्य आदि आठ पुत्रों का नाश कर डालेगा। उनका नाश हो जाने पर कलियुग में मौर्यवंशी नर पति पृथ्वी पर राज्य करेंगे। वही ब्राह्मण पहले पहल चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर अभिषिक्त करेगा।

यह भविष्य वाणी श्री मद्भागवत् की है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र का इतिहास आगे बढ़ता है।

---

(१) [illegible] और श्रीमद्भागवत। (२) श्रीमद्भागवत अ० २२ श्लोक ४ से ५ तक।
(३) श्रीमद्भागवत अ० १ बारहवां स्कन्ध श्लोक १ से ११ तक।

कुरुक्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व

महाभारत से हर्ष तक

महाभारत के महायुद्ध के पश्चात भारतवर्ष को एक अन्धकारमय युग से गुजरना पड़ा। इस युद्ध ने इस विशाल देश के संगठन को झकझोर दिया और इसके अंजर पंजर ढीले करके रख दिए। महाभारत के नर संहार के पश्चात् कुरुक्षेत्र का पुण्य प्रदेश उजाड़ हो गया। यह तपोभूमि सेनाओं ने रौंदकर रक्तरंजित कर दी। कोई केन्द्रीय शासन न रहने से अराजकता का ताण्डव नृत्य हुआ और देश छिन्नभिन्न होकर छोटे छोटे राज्यों में बंट गया। इन छोटे छोटे राजाओं ने जिसकी लाठी उसकी भैंस के सहारे यह अराजकता फैलाई जिसमें किसी इतिहास या शास्त्र का जीवित रहना सम्भव न था और यदि इस समस्त युग के युग में इतिहास जीवित भी रहता तो महान् आश्चर्यजनक बात होती।

कुरुक्षेत्र वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म का मुख्य केन्द्र था। ईसा से पांच सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष में दर्शन की दो विचार धाराओं ने बहुत जोर पकड़ा। इन दोनों विचार धाराओं का मुख्य क्षेत्र उत्तर भारत था। ब्राह्मण धर्म के खण्डहरों से दो दर्शन जैन धर्म और बौद्ध धर्म निकले। इन दोनों धर्मों के नायक क्षत्रिय राजकुमार थे। ब्राह्मण धर्म द्वारा जीवन की समस्याओं को सुलझता न देखकर इन दो धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। जैन और बौद्ध धर्मों का विकास एक ही काल में और एक ही क्षेत्र में हुआ और एक ही क्षेत्र में यह धर्म अधिक फैले। किसी जैन तीर्थंकर के कुरुक्षेत्र आने का प्रमाण तो नहीं मिलता परन्तु महात्मा बुद्ध कुरुक्षेत्र पधारे थे और उन्होंने कुरुक्षेत्र में प्रवचन भी दिया था। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में लिखा है।

"बुद्धकाल में कुरुक्षेत्र सोलह जन पदों में से एक था"[1] एक और बौद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि जम्बू द्वीप के सोलह जन पदों में कुरुक्षेत्र भी एक जन पद था।[2] महात्मा बुद्ध ने एक बार कुरुक्षेत्र का भ्रमण किया।[3]

फिर भी स्वभाववश् जैन धर्म और बुद्ध धर्म का कुरुक्षेत्र से जो कि ब्राह्मण धर्म का

---

(१) पाणिनी अष्टाध्यायी ४-२ १७५। १७५, ४-१ १७०। (२) ललित विस्तार (३) कल्पद्रुम अवदान १ १२० एम पी० एन।

प्रकाश स्तम्भ था कोई समाज न था। इस युग में कुरुक्षेत्र का कोई विशेष इतिहास नहीं मिलता।

मौर्यकाल और कुरुक्षेत्र

छठी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्थान के साथ-साथ कुरुक्षेत्र का भी उत्थान हुआ यह प्रदेश एक बार फिर प्रकाश में आया और इसकी महत्ता बढ़ी। मौर्य काल में कुरुक्षेत्र संस्कृति तथा आध्यात्मिक शिक्षा का सर्वोत्तम केन्द्र था। यूनानी विद्वान मेगास्थनीज सिल्यूकस का राजदूत बनकर भारत वर्ष में कई वर्ष रहा।

"सरस्वती तट का यह प्रदेश जिसे कुरुक्षेत्र कहते हैं रमणीक और शान्ति मय है। कला और विद्या राज्य की छत्र छाया में फल फूल रहे हैं।[१]

मौर्य काल में बौद्ध धर्म के प्रभाव का सूर्य अस्त हो रहा था और उस समय ब्राह्मण धर्म के सुदिन फिर लौट आए थे। कुरुक्षेत्र उत्तर भारत के लोगों के लिए ब्राह्मण धर्म का शक्तिशाली केन्द्र बन गया। विद्वानों और धर्मज्ञों का निवास स्थान होने के कारण विद्या कला और संस्कृति का प्रकाश समस्त उत्तरा खण्ड के अन्धकार को दूर करने लगा।

गुप्त वंश और कुरुक्षेत्र

गुप्त वंश के राजा भी मौर्यों के पद चिन्हों पर चले और कुरुक्षेत्र प्रदेश पर उनकी कृपा भी बनी रही। गुप्त वंश के काल में भी कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध था इसका अनुमान इससे लगता है कवि श्रेष्ठ कालिदास ने अपनी अमरकृति मेघदूत काव्यम् में कुरुक्षेत्र का वर्णन किया है।

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्र प्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि॥[२]

इसके उपरान्त ब्रह्मावर्त देश में छाया रूप से प्रवेश करने वाले तुम जहां पर कौरव पाण्डवों का युद्ध हुआ उस कुरुक्षेत्र में जाना। जैसे तुम कमलों पर असंख्य जलधारा बरसाते हो वैसे ही गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन ने सम्मुख खड़े हो राजा लोगों के मुखों पर शतशः तीक्ष्ण बाण बरसाए और उनके सिर कमलों को काटा था।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवती लोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समर विमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना—
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः॥[३]

हे साथी! केवल कौरव और पाण्डवों पर बराबर स्नेह के होने से मध्यस्थपन स्वीकार

---

(१) मेगास्थनीज फ्रगम ४ सम्प्लो XX, C 11 F। (२) मेघदूत, पूर्व मेघ श्लोक ४८।
(३) कालीदास कृत मेघदूत पूर्व मेघ श्लो ५

कर किसी पक्ष में युद्ध करने के लिए न मिलने वाले बलदेवजी ने अपनी अत्यन्त प्रिय व जिससे रेवती की आँखों का चिन्ह झलकता है ऐसी सुरा को त्याग जिस सरस्वती नदी का सेवन किया उसी सरस्वती के जल का तुम सेवन करो। ऐसा करने से काले रंग के भी तुम भीतर से शुद्ध हो जाओगे।

परन्तु गुप्त वंश के अन्तिम वर्षों में भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी द्वारों को लांघती हूण जोर-जोर से खट खटाने लगे। समस्त भारत देश भयभीत हो उठा। ईसा की मृत्यु के ४०० वर्ष पश्चात हूणों की सेना भारतवर्ष पर टूटी। हूणों के आक्रमण की एक तेज आंधी आई और इस भयंकर आन्धी में गुप्त वंश का रहा सहा राज्य सूखे पत्तों के समान उड़ गया। स्कन्द गुप्त के राज्य काल में उत्तर भारत पर श्वेत हूणों का अधिकार हो गया और कुरुक्षेत्र प्रदेश हूणों के साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया। हूण नरेश मिहिरगुल और तोमाण क्रूर, असभ्य और हिंसक प्रकृति के राजा थे। उनकी भयानक और विनाशकारी गाथाएं आज भी रोंगटें खड़े कर देती हैं। वह युग जिसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने भारतवर्ष के छोटे छोटे गणराज्यों को पिरोकर सार्व भौम साम्राज्य बनाया था, हूणों के तीखे झटकों से टूट गया। देश फिर छोटे-छोटे राज्यों में बट गया। अराजकता युद्ध संघर्ष, लड़ाइयाँ झगड़े और रक्तपात प्रतिदिन की साधारण सी घटनाएं बन गई। उस समय न तो कोई एक छत्र शासन था और न कोई विधान। इस काल में उत्तर भारत में अनेक परिवर्तन हुए और समूचे उत्तर भारत का स्वरूप ही बदल गया। इन परिवर्तनों का कुरुक्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ना आवश्यक था। संस्कृति की वह ज्योति वह प्रकाश जो मौर्य काल में फैला था और गुप्त वंश के राजाओं ने जिस पर स्वर्ण आभा की थी टिमटिमाने लगा। कला और संस्कृति राज्य पर आधारित होती हैं वह राजा की आश्रित होकर उन्नति करती हैं। पर उत्तर भारत में तो राज्य के नाम पर हूणों की पशुता का नग्न ताण्डव नृत्य था, फिर कला और संस्कृति जिसका कि केन्द्र कुरुक्षेत्र था किस बूते और किसकी गोद में फूलती फलती ?

यौधेय गणतन्त्र में कुरुक्षेत्र

सन् ३२०—४०० ई० में जब गुप्त वंश के प्रतापी सम्राट समुद्र गुप्त का राज्य था। कुरुक्षेत्र प्रदेश अथवा सतलुज और यमुना नदियों के मध्य जिला हिसार व रोहतक को अपने आंचल में लिए महान् यौधेय जाति का गणतंत्र प्रणाली द्वारा संचालित राज्य था। सर्व प्रथम श्री राहुल सांकृत्यायन ने यौधेयों पर एक उपन्यास लिखा है जिसमें कल्पना का सहारा अधिक लिया गया है। परन्तु इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि इस प्रदेश में यौधेय जाति का प्रबल गणतंत्र था। यह गणतंत्र चौथी सदी में फला फूला और चौथी सदी के अन्तिम चरण में सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने यौधेयों का ध्वंस किया। उस समय गणतन्त्र प्रणाली द्वारा संचालित राज्य समाप्त हो रहे थे और एकछत्र केन्द्रित राज्यों की नींव पड़ती हो रही थी। यौधेय गणतंत्र भारतवर्ष का अन्तिम गणतन्त्र था। इलाहाबाद के किले में कौशाम्बी से लाया गया एक पाषाण स्तम्भ है उसमें समुद्र गुप्त ने लिखा है।

प्रकाश स्तम्भ या कोई समाज न था। इस युग में कुरुक्षेत्र का कोई विशेष इतिहास नहीं मिलता।

मौर्यकाल और कुरुक्षेत्र

छठी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्थान के साथ-साथ कुरुक्षेत्र का भी उत्थान हुआ यह प्रदेश एक बार फिर प्रकाश में आया और इसकी महत्ता बढ़ी। मौर्य काल में कुरुक्षेत्र संस्कृति तथा आध्यात्मिक शिक्षा का सर्वोत्तम केन्द्र था। यूनानी विद्वान मैगास्थनीज सिल्यूकस का राजदूत बनकर भारत वर्ष में कई वर्ष रहा।

"सरस्वती तट का यह प्रदेश जिसे कुरुक्षेत्र कहते हैं रमणीक और शान्ति मय है। कला और विद्या राज्य की छत्र छाया में फल फूल रहे हैं।[1]

मौर्य काल में बौद्ध धर्म के प्रभाव का सूर्य अस्त हो रहा था और उस समय ब्राह्मण धर्म के सुदिन फिर लौट आए थे। कुरुक्षेत्र उत्तर भारत के लोगों के लिए ब्राह्मण धर्म का शक्तिशाली केन्द्र बन गया। विद्वानों और धर्मज्ञों का निवास स्थान होने के कारण विद्या कला और संस्कृति का प्रकाश समस्त उत्तर खण्ड के अन्धकार को दूर करने लगा।

गुप्त वंश और कुरुक्षेत्र

गुप्त वंश के राजा भी मौर्यों के पद चिन्हों पर चले और कुरुक्षेत्र प्रदेश पर उनकी कृपा भी बनी रही। गुप्त वंश के काल में भी कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध था इसका अनुमान इससे लगता है कवि श्रेष्ठ कालिदास ने अपनी अमरकृति मेघदूत काव्यम् में कुरुक्षेत्र का वर्णन किया है।

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षात्र प्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥[2]

इसके उपरान्त ब्रह्मावर्त देश में छाया रूप से प्रवेश करने वाले तुम जहाँ पर कौरव पाण्डवों का युद्ध हुआ उस कुरुक्षेत्र में जाना। जैसे तुम कमलों पर असंख्य जलधारा बरसाते हो वैसे ही गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन ने सम्मुख खड़े हो राजा लोगों के अंगों पर शतशः तीक्ष्ण बाण बरसाए और उनके सिर कमलों को काटा था।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवती लोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समर विमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना—
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥[3]

हे साथी! केवल कौरव और पाण्डवों पर बराबर स्नेह के होने से मध्यस्थपन स्वीकार

(१) मैगास्थनीज भाग ४ खण्ड XX, C II F। (२) मेघदूत पूर्व मेघ श्लोक ४८।
(३) कालीदास कृत मेघदूत पूर्व मेघ श्लो ९

कर किसी पक्ष में युद्ध करने के लिए न मिलने वाले बलदेवजी ने अपनी अत्यन्त प्रिय व जिससे रेवती की आँखों का चिन्ह निकलता है ऐसी सुरा को त्याग जिस सरस्वती नदी का सेवन किया, उसी सरस्वती के जल का तुम सेवन करो। ऐसा करने से काले रंग के भी तुम भीतर से शुद्ध हो जाओगे।

परन्तु गुप्त वंश के अन्तिम वर्षों में भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी द्वारों को जंगली हूण ज़ोर-ज़ोर से खट खटाने लगे। समस्त भारत देश भयभीत हो उठा। ईसा की मृत्यु के ५०० वर्ष पश्चात हूणों की सेना भारतवर्ष पर टूटी। हूणों के आक्रमण की एक तेज आंधी आई और इस भयंकर आन्धी में गुप्त वंश का बचा खुचा राज्य सूखे पत्तों के समान उड़ गया। स्कन्द गुप्त के राज्य काल में उत्तर भारत पर श्वेत हूणों का अधिकार हो गया और कुरुक्षेत्र प्रदेश हूणों के साम्राज्य का एक भाग बन गया। हूण नरेश मिहरगुल और हलाकू क्रूर, असभ्य और हिंसक प्रकृति के राजा थे। उनकी भयानक और विनाशकारी गाथाएँ आज भी रोंगटे खड़े कर देती हैं। वह युग जिसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने भारतवर्ष के छोटे छोटे गणराज्यों को पिरोकर सार्व भौम साम्राज्य बनाया था, हूणों के तीखे झटकों से टूट गया। देश फिर छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया। अराजकता युद्ध संघर्ष, लड़ाइयाँ झगड़े और रक्तपात प्रतिदिन की साधारण सी घटनाएँ बन गईं। उस समय न तो कोई एक छत्र शासन था और न कोई विधान। इस काल में उत्तर भारत में अनेक परिवर्तन हुए और समूचे उत्तर भारत का स्वरूप ही बदल गया। इन परिवर्तनों का कुरुक्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ना आवश्यक था। संस्कृति की वह ज्योति, वह प्रकाश जो मौर्य काल में फैला था और गुप्त वंश के राजाओं ने जिस पर धूप छाया की थी, टिमटिमाने लगा। कला और संस्कृति राज्य पर आधारित होती है, वह राजा की आश्रित होकर उन्नति करती है। पर उत्तर भारत में तो राज्य के नाम पर हूणों की पशुता का नग्न ताण्डव नृत्य था, फिर कला और संस्कृति, जिसका कि केन्द्र कुरुक्षेत्र था किस बूते और किसकी गोद में फूलती फलती ?

यौधेय गणतन्त्र में कुरुक्षेत्र

सन् ३२०—४०० ई० में जब गुप्त वंश के प्रतापी सम्राट समुद्र गुप्त का राज्य था। कुरुक्षेत्र प्रदेश अथवा सतलुज और यमुना नदियों के मध्य जिला हिसार व रोहतक को अपने आंचल में लिए महान् यौधेय जाति का गणतंत्र प्रणाली द्वारा संचालित राज्य था। सर्व प्रथम श्री राहुल सांकृत्यायन ने यौधेयों पर एक उपन्यास लिखा है जिसमें कल्पना का सहारा अधिक लिया गया है। परन्तु इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि इस प्रदेश में यौधेय जाति का प्रबल गणतंत्र था। यह गणतन्त्र चौथी सदी में फला फूला और चौथी सदी के अन्तिम चरण में सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने यौधेयों का ध्वंस किया। उस समय गणतंत्र प्रणाली द्वारा संचालित राज्य समाप्त हो चुके थे और एकछत्र केन्द्रित राज्यों की नींव पड़ती हो रही थी। यौधेय गणतंत्र भारतवर्ष का अन्तिम गणतंत्र था। इलाहाबाद के किले में कौशाम्बी से लाया गया एक पाषाण स्तम्भ है उसमें समुद्र गुप्त ने लिखा है।

"भिर्मासमाघु गामन यौधेयमाद्रका   सर्वकरदानाज्ञाकरण प्रणामा गमन   "[1]

यौधेयों ने कर दान आज्ञा स्वीकार और प्रणाम द्वारा मुझे परितुष्ट किया है। इससे स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त ने यौधेय गण का उच्छेद नहीं किया। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० अलतेकर के मतानुसार कुषाणों के शासन को समाप्त करने का श्रेय गुप्तों भारशिवों को नहीं बल्कि यौधेयों को है। यौधेयों के सिक्के ईसा पूर्व दूसरी सदी से चौथी सदी तक के मिलते हैं। प्रथम सिक्कों पर लिखा है 'यौधेयानां बहुधान्यकानां" अथवा 'भगवस्वामी ब्रह्मण्य देवाय" पश्चात के सिक्कों पर यौधेय गणस्य जयः", यौधेयानां जयमन्त्र धारिनां"। भरतपुर राज्य में एक खुदे लेख पर है यौधेयगणपुरस्कृतस्य महाराज महासेनापते पु ब्राह्मण पुरोगं चाधिष्ठान शरीरादि कुशलं पृष्ट्वा लिखत्यस्तिरस्मा। इन्हीं यौधेयों के प्रतापी गणतंत्र का कुरुक्षेत्र मध्य प्रदेश था।

वर्धन काल में कुरुक्षेत्र

ऐसे समय में जब देश टूट रहा था तब शक्तिशाली तेजस्वी सम्राट प्रभाकर वर्धन इस ओर अमावस्या के वातावरण में पूर्णिमा का चन्द्र बनकर कुरुक्षेत्र के आकाश से निकला उत्तर भारत उसके प्रकाश से आलोकित हो गया। यह सातवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल था। सम्राट प्रभाकर वर्धन ने अपनी वीरता से बचे खुचे पतली हूणों को पराजित करके पीछकर रख दिया और कुरुक्षेत्र प्रदेश में एक सुदृढ़ राज्य की नींव डाली। सम्राट प्रभाकर वर्धन शिव के उपासक थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी राजधानी का नाम स्थाणेश्वर और राज्य का नाम श्रीकण्ठ जनपद रखा। सम्राट प्रभाकर वर्धन बड़ा प्रतापी राजा हुआ है। उसने सिन्धु, गान्धार, गुर्जर, लाट मालव देशों पर विजय प्राप्त की थी। हूण रूपी हिरनों के लिए वह केसरी स्वरूप था। इस प्रकार वह स्थाण्वीश्वर के छोटे से राज्य को बढ़ाकर महाराजाधिराज की पदवी से विभूषित हुआ। इसी कारण उसका दूसरा नाम प्रतापशील था। प्रभाकर वर्धन अत्यन्त पराक्रमी होते हुए भी दयावान् था। उसने मालवा के राजा के मारे जाने पर उसके अनाथ कुमारों के साथ स्नेह व्यवहार किया। वह सूर्य का उपासक था। उसकी रानी यशोमती के चरित्र का चित्रण एक भारतीय पतिव्रता के रूप में हुआ है। रानी यशोमती के उदर से ही राज्यवर्धन हर्षवर्धन और राज्यश्री ने जन्म लिया। प्रभाकर वर्धन ने राज्यश्री का विवाह बड़ी धूमधाम से मौखरि वंशज अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा के साथ किया। सम्राट प्रभाकर वर्धन के सुचारु और शक्ति सहित चलाए राज्य प्रबन्ध के कारण कुरुक्षेत्र प्रदेश में पुनः शान्ति स्थापित हुई। शान्ति के साथ साथ उसकी सहचरी बहनों कला संस्कृति और विद्या का पुनरागमन फिर कुरुक्षेत्र प्रदेश में हुआ। सम्राट प्रभाकर वर्धन साहसी योद्धा और वीर राजा थे। उन्होंने कुरुक्षेत्र प्रदेश का नव निर्माण तेजी से करना प्रारम्भ किया।

भाग्यवश सम्राट प्रभाकर वर्धन के शासन काल में संस्कृत का सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार बाणभट्ट हुआ है। बाणभट्ट राज्य कवि और हर्ष वर्धन का मित्र था। बाणभट्ट

ने प्रभाकर वर्धन और हर्ष वर्धन के राज्य काल का विवरण अपनी अमर कृति 'हर्ष चरित' में बहुत सुन्दर ढंग से किया है। हर्ष चरित एक ऐतिहासिक गाथा है। बाणभट्ट ने हर्ष चरित के आरम्भ में अपनी आत्म कथा भी दी है और हर्ष वर्धन को नायक बनाकर उसके राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का ताना बाना उसके चारों ओर बुना है। बाणभट्ट ने हर्ष चरित में उस काल की राजनीति सामाजिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन विद्वानों की गोष्ठियों और विशेषतः कुरुक्षेत्र के जन साधारण से लेकर राजमहल की गतिविधियों पर तथ प्रकाश डाला है। हर्ष चरित में उसने कोरा इतिहास ही नहीं लिखा बल्कि उस समय के दरबारी और ग्राम्य जीवन का ऐसी सुन्दर शैली में वर्णन किया है कि ऐसा लगता है मानो उस समय का कुरुक्षेत्र दर्पण लेकर सम्मुख आ गया है। वह लिखता है, "स्थाण्वीश्वर में मुनियों के तपोवन साधकों की संगीतशालाएं विद्यार्थियों के गुरुकुल विदग्धों की विट गोष्ठियां चारणों के महोत्सव समाज थे। धानुष्की पजीवी गायक, शिल्पी व्यापारी बन्दी बौद्ध भिक्षु आदि सभी प्रकार के लोग थे। स्थाण्वीश्वर के आस पास का देश इतिहास तथा श्रुति परम्परा से बहुत प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। महाकवि बाणभट्ट के कथनानुसार श्रीकण्ठ नाम का महा जनपद जिसका स्थाण्वीश्वर एक अन्तर्भुक्ति प्रदेश था बहुत समृद्धिशाली था। उसमें हरे भरे उपवन और सुन्दर कुञ्ज अन्न से सम्पन्न खेत और फलों से भरे बाग थे। देश के निवासी सुख और शान्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते थे। सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुएं प्रचुर परिमाण में उपलब्ध थीं। लोगों का आचार निष्कलंक था वे पुण्यात्मा थे और उनमें अतिथि सत्कार का भाव आवश्यकता से अधिक मात्रा में वर्तमान था। उनके बीच महापुरुषों का अभाव नहीं था। अधर्म वर्णसंकर, विपत्ति तथा व्याधि का कहीं नाम नहीं था। सत्य के जिज्ञासुओं तथा सांसारिक सुख की कामना करने वालों को समान सुविधाएं प्राप्त थीं। ऋषियों व्यापारियों तथा प्रेमियों सभी के लिए यह देश प्रिय था। विद्वानों और योद्धाओं से यह देश भरा पड़ा था। ललित कला के प्रेमियों की संख्या भी कम नहीं थी। गुण तथा धार्मिक आचरण का बड़ा सम्मान किया जाता था।[1]

लोगों के विषय में यह कहा जाता है कि—यहाँ के लोगों के रीति रिवाज और रहन सहन संकुचित तथा अनुदार थे। सम्पन्न कुल अपव्ययिता में एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते थे। मंत्र विद्या में लोगों का बहुत विश्वास था। अद्भुत अथवा चमत्कारपूर्ण कार्यों का वे बहुत मूल्य आंकते थे।[2]

महाकवि बाणभट्ट ने श्रीकण्ठ जन पद के विषय में अपने भाई बन्धुओं के घेरे में बैठ हर्ष चरित कहते हुए आरम्भ किया—

श्रूयताम्—अस्ति पुण्यकृतामधिवासो वासवावास इव वसुधायामवतीर्णः सततमसंकीर्णवर्णव्यवहारस्थितिः कृतयुगव्यवस्थः, स्थलकमलवहलतया पोत्रोन्मूल्यमानमृणालैः स्फोटितमेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरकोलाहलैर्हलैरुल्लिख्यमान

(१) महाकवि बाण कृत हर्ष चरित—तृतीय उच्छ्वास पृ० १७०।
(२) वार्स जिल्द १ पृ ३-४।

क्षेत्रे क्षीरोदपयःपायिपयोदसिक्ताभिरिव पुण्ड्रेक्षुवाटसंततिभिर्निरन्तरः, प्रतिदिशमपूर्वपर्वतकैरिव खलधानधाम्भिर्विभज्य—माने सस्यकूटैः सकलसफलसीमान्तः, समन्तादुद्घातघटीसिच्यमानैर्जीरकस्तूटैर्जटिलित भूमिः, उर्वरापरीयोभि धासेयैर संकुलः,

सुनिए—श्रीकण्ठ नाम का एक जनपद।

वह मानों पृथ्वी पर उतरा हुआ पुण्यशाली लोगों का निवास स्थान था। वहाँ ब्राह्मण आदि वर्णों की मर्यादा परस्पर एक दूसरे मिली न थी मानों वहाँ सतयुग की व्यवस्था हो गई हो। हल से वहाँ खेत जोते जा रहे थे स्वतःफलतों के अधिक होने के कारण हल के फार से मृणाल उखाड़े जाते थे और कमलों में बैठे हुए भौंरे जब गुंजारने लगते तो लगता कि पृथ्वी के उत्कृष्ट गुणों का वर्णन कर रहे हों। चारों ओर ईख के खेत फैले हुए थे जिन्हें मानों क्षीर के समुद्र को पीकर आए मेघों ने बरस कर सींचा था। सब ओर जगह-जगह पर खलिहानों में कृत्रिम पर्वत की भाँति धान की ढेरियाँ लगती थीं। रहट के द्वारा जीरक की फसल से हरी भरी जमीन सींची जाती। उपजाऊ खेतों में धान लहराते थे। जगह-जगह की कृत्रिम भूमियों में पके हुए उड़द की रंगीली और पककर चटके हुए मूंग और गेहूँ के खेत सब ओर फैले हुए थे। चरवाहे चारों ओर जंगलों में भैंस की पीठ पर बैठकर गीत गा रहे थे और चरती हुई गायों की देखभाल करते थे। गायों में कुकुरमक्खियाँ लपट कर उन्हें परेशान करतीं और उड़ती हुई चिड़ियाँ भी उनके पीछे पड़ जाती। गायों की घेंट में बँधी हुई घंटियाँ और छोटे-छोटे घुंघरू बहुत मधुर आवाज करते थे। गायें चारों ओर जंगल में रम्भाती थीं। अजीर्ण होने की आशंका से जिनकी के बछड़े बैल द्वारा पिए हुए क्षीर समुद्र को मानों दूध के अनेक धार के रूप में उत्पन्न करती थीं। वे महोक्षी द्वारा छँटी घास की कुट्टी खाकर अघा जाती थीं। अनेक यज्ञों के होम धूमों से अंधे होने के कारण इन्द्र के द्वारा छोड़ी हुई आँखों के रूप में हजारों मृग उस स्थान की चित्र विचित्र करते थे। केवड़े के पत्तों से उड़-उड़कर उसके पराग उस प्रकार भर कर शोभा उत्पन्न करते थे जैसे प्रथम गणों के भस्म रमाने से भगवान् शिव के नगर-मार्ग शोभित हो जाते हैं। गाँव के बागड़े में साग के खेतों में अंकुर लग रहे थे। निर्जन के मार्गों में ऊँट के बच्चे आखरोट के पत्ते तोड़ कर चट कर जाते। हाथों से पकड़कर झुकाए हुए मातुलुंगी के कोमल फलों के रस से भिगे, स्वेच्छा से तोड़े गए पुष्पों के पराग से भरे लतामण्डप थे वहाँ ताजे फलों को चूसकर पथिक लोग सुख पूर्वक सोते मानों उन देवताओं ने अमृतरस के जलसाले के रूप में उन्हें अर्पित किया हो। और भी, वहाँ जिनके लाल-लाल बीजों में मानों तुम्बे के चोंच की जाली लग गई हो ऐसे अनार के फल लगे थे। उन पर बैठे हुए वानरों के लाल लाल गालों को देखकर फूलों का भ्रम होने लगता था। वहाँ के उपवनों में माली नारियल के फलों का पानी पीते थे। राह चलते लोग पिंड खजूर लपक लेते थे। अंगूर मधुर गंध से भरी ताड़ी को चाट जाते। चकोर आरूक नामक फलों को कुतर डालते। लम्बे-लम्बे कुंकुम वृक्षों की पंक्तियों से वहाँ के जलाशय घिरे हुए थे। उनमें पशुओं के उतर कर जल पीने से किनारे का पानी मटमैला रहता था। सैकड़ों राही वहाँ आकर टिकते थे। ऊँटों के पालने वाले ऊँटों के

साथ-साथ भेड़ों को भी चारों ओर जुटाते थे। कहीं-कहीं दिशाओं में घोड़ियाँ मानों सूर्य के रथ के घोड़ों को लुभाने के लिए चरती थीं। कुंकुम की भूमि में लुंठन करने से कुंकुम का रस उनके शरीर में लग जाता था। मुंह उठाकर थुथुन को मरोड़ कर वे हवा पीती तो लगता कि अपने पेट के बच्चे को हवा की गति सिखाने का प्रयत्न करती हैं। वे वातहरिणियों के समान स्वच्छन्द विचरण करती थीं। निरन्तर यज्ञ-धूम के अन्धकार द्वारा फैलते हुए मुग्ध हंसयूथ की भाँति लगते थे। वह जनपद संगीत में मृदङ्ग की आवाज पर मस्त होकर नाचते हुए मयूरों के समान अपने वैभव से सारे जीवलोक को मुखरित कर रहा था। चन्द्रमा की किरणों के समान अवदात चरित वाले मुक्त कम मुनिजनों से वह सुशोभित था। सैकड़ों राही जैसे किसी महान् वृक्ष के फलों को लपक-लपककर लेने लगते हैं उसी प्रकार सब अतिथि वहाँ आकर तृप्त होते थे। कस्तूरी की सुगन्ध में बसे हुए मृगरोम द्वारा निर्मित वस्त्र को पहनने वाले हिमालय के समीप के पर्वतों के समान वहाँ महत्त्वशाली लोग रहते थे। विष्णु के नाभि-कमल के समान वहाँ अनेक जलाशय थे। जिनमें खिले कमलों पर उत्तम पक्षी सुशोभित होते थे। दूध के मथने से उठा हुआ महा घोष वहाँ की पृथ्वी को धोता हुआ दिशाओं से भरने लगता था तब ऐसा लगता कि क्षीर सागर के मंथन का आरम्भ हो गया हो।[1]

वहाँ विविध अग्नियों से उत्पन्न धुएँ के लगने के कारण निकले हुए अश्रु-जल से धुलकर मानों अधम् हरियाँ (विकार) समाप्त हो गई थीं। चयन-यज्ञ के ईंट की अग्नियों से मानों जल कर पाप दिखाई नहीं देने लगे। यूप की छिली हुई लकड़ी में बाँधकर फरसे से काटे गए पशु की भाँति मानों अधर्म विदीर्ण हो गया। यज्ञ की अग्नि से उठे हुए मेघ की भाँति धुएं की अलकार से धुलकर मानो वर्णों की विषमता मिट गई। दान में दी जाती हुई हजारों की संख्या में गायों के सींगों से मानो टुकड़े-टुकड़े होकर कलि भाग गया। विपत्तियाँ मानो देव मन्दिर के पत्थरों को छाँटने वाली टाँकियों से खण्डित होकर चूर्ण हो गई। उपद्रव मानों महादानों के समय में होने वाले कोलाहल से डरकर भाग गए। व्याधियाँ मानो सत्रों के रसोईघरों में जलती हुई अग्नियों के ताप से संतप्त होकर विलीन हो गईं। कुमो त्सर्ग के अवसर पर बजाए गए नगाड़ों की ध्वनि से डर कर मानों अपमृत्यु पास में नहीं फटकती थी। ईति बाधाएं मानों निरन्तर वेदध्वनि के होने से बहरी होकर चली गईं। दुर्भाग्य मानों धर्म के अधिकार से परिभूत होकर उत्पन्न नहीं हुआ।[2]

श्री कण्ठ जनपद की राजधानी स्थाण्वीश्वर नगर का वर्णन महाकवि बाण ने इस प्रकार किया है।

"तस्य चैवंविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव भुवनस्य, कुङ्कुमसमर्पितबहु—महिषीसहस्रशोभितोऽन्तःपुरनिवेश इव यमस्य, मरुद्गुप्य—मानचमरीवासम्भ्रमन पातमवलित प्रान्त एकदेश इव सुरराज्यस्य,

---

(१) महाकवि बाण कृत हर्षचरितम् तृतीय उच्छ्वास पृ० १५१ १५७।
(२) महा कवि बाण कृत हर्षचरितम् तृतीय उच्छ्वास पृ० १५७-१५८।

ज्वलन्महाशिखिसहस्रदीप्यमानदशदिगन्तः शिबिरसंनिवेश इव कृतयुगस्य, यथा स्थानस्थितमहर्षिध्यानाधीयमान सकलासुकृतप्रशमः प्रथमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य, सकलसमुद्रमहावाहिनी घनसंकुलो विपदा इवोत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गणसता पामभिन्न सकलजनो विजिगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारसक्षिक्तधवलगृहपङ्क्तिपाण्डुर-प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य मधुमदमत्तकामिनीभूषणरवभरितभुवनो नामाभिहार इव कुबेरनगरस्य स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेषः।

इस प्रकार के उस जनपद में स्थाण्वीश्वर नाम की राजधानी थी। जनक उपवनों में सुन्दर फूलों की फैलती हुई गन्ध से ऐसा लगता था मानों संसार के यौवन का प्रारम्भ होने लगा हो। कुंकुम की उबटन से हजारों सुन्दरियां अपने शरीर की श्री वृद्धि करती थीं मानों वह धर्म का अन्तःपुर हो। वायु से कम्पित चमरी गाय के बालों से उसके समीप का भू भाग सफेद था मानों वह स्वर्ग का एक देश हो। जलती हुई हजारों अग्नियों से समस्त दिशाएं प्रकाशित थीं मानों वह सतयुग का सेनानिवेश हो। पद्मासन लगाकर बैठे हुए महर्षि सारे पापरागों का शमन करते थे मानों वह ब्रह्मलोक का प्रथम अवतार हो। बड़ी-बड़ी सफेद नदियाँ अपनी कल-कल से उसे भर देती थीं मानो उत्तर कुरु ही वहां आ गए हों। राजा के छल-पूर्वक कर लेने की बात तो वहां के लोग जानते ही नहीं थे मानों वह त्रिपुर के जीतने का इच्छुक है। सुधा के रस से पुते हुए उजले-उजले वहां भवन थे मानों वह चन्द्रलोक का प्रतिनिधि हो। मधुपान से मतवाली कामिनियों के गहनों की आवाज सारे भुवन में व्याप्त हो जाती थी मानों वह कुबेर की नगरी अलका का ही बदला हुआ रूप हो।

मुनि लोग उसे तपोवन कहते वेश्याएं उसे कामायतन समझतीं लासक अर्थात् नर्तक लोग समझते कि यह संगीतशाला है। शत्रु समझते कि यमनगर है याचक समझते कि चिन्तामणि की भूमि है शस्त्रों की जीविका वाले लोग उसे वीर भूमि कहते विद्यार्थी उसे गुरुकुल कहते गाने वाले उसे गन्धर्वनगर समझते वैज्ञानिक उसे विश्वकर्मा का मन्दिर समझते वणिक लोग कहते कि लाभ की जगह है, बन्दी लोगों का निर्णय था कि जुआ खेलने योग्य स्थान है सज्जन उसे साधु समागम कहते शरणार्थी लोग उसे वज्रनिर्मित पिंजड़ा समझते चतुर लोग विटगोष्ठी की कल्पना करते पथिक लोग उसे अपने पुण्यों का परिणाम स्वरूप मानते तान्त्रिक लोग साधना के लिए उसे असुर-विवर समझते भिक्षु लोग उसे बौद्ध विहार मानते कामी लोग उसे अप्सराओं का नगर कहते चारणों के अनुसार वह महोत्सवों का समाज था और उसे धन का प्रवाह ही समझते।

वहां की स्त्रियाँ मातंगगामिनी अर्थात् हाथी के समान चलने वाली और शीलवती थीं। वे गोरी अथवा गौर वर्ण वाली थीं। और ऐश्वर्य में अनुराग करती थीं। वे सांवली भी थीं और लाल मणियों के आभूषण पहनती थीं। उजले दांतों से उनका मुख पवित्र था और मदिरा की गंध वाली सांस लेती थीं। चन्द्रमा के समान सुन्दर देह वाली थीं शिरीष के फूल के समान उनके अंग कोमल थे पुरुष उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते थे वे कञ्चुक धारण करती थीं मोटे जघनों से सुशोभित थीं उनका कटिभाग पतला था।

वे लावण्य वाली और मधुर भाषणी थी। वे प्रभावगुम्य थीं और उनका वर्ण प्रसन्न एवं उज्ज्वल था प्रियसमागम के लिए उत्सुक न थी और पूर्ण यौवन पर आ पहुँची थीं।

वहाँ सुन्दरियों की आँखें ही फिर की सहज कुसुम-माला बन जातीं कुवलय के फूलों की माला भार प्रतीत होती। उनके गालों पर बिखराए हुए बालों के प्रतिबिम्ब ही क्लेश न देने वाले कर्णावतंस बन जाते फिर कान में कर्णावतंस के रूप में तमाल पत्र का लगाना पुनरुक्तिमात्र हो जाता। अपने प्रिय की कथा ही उनके लिए सुन्दर कान का आभूषण बन जाती, फिर भी उनका कुण्डल लगाना आडम्बर मात्र था। उनके कपोल ही निरन्तर आलोक उत्पन्न करते थे मणियों के दीपक तो केवल वैभव के चिह्न होने के कारण रखे जाते थे। उनकी सुगन्धित साँसों पर उमड़ते हुए भौंरे ही उनके मुख पर सुन्दर घूँघट पट का काम करते थे फिर भी प्रथा के नाते वे अपने मुख पर घूँघट की जाली डाल लेती थीं। उनकी वाणी अत्यन्त मधुर थी वाद्य कला के रूप में वे तारों को छेड़कर वीणा बजाती थीं। उनकी मुस्कान ही अत्यन्त सुगन्धित पटवास का काम देती फिर कपूर की धूम निरर्थक प्रतीत होती थी। उनके अधर की फैलती हुई कान्ति ही उनके अंगराग का रूप धारण कर लेती, फिर बिना किसी लाभ के कुंकुम लगाना उनके लावण्य का कलंक बन जाता था। उनकी कोमल भुजाएँ ही परिहास के अवसर में ठोंकने की बेंतलता थीं फिर मृणालों का वहाँ प्रयोजन ही क्या? यौवन की मादकता से उनके स्तनों पर छूटते हुए पसीने ही सुन्दर हार के समान लगते फिर उनके शरीर पर हार बोझ मात्र प्रतीत होते थे। उनके नितम्ब ही प्रेमी जनों के विश्राम के लिए स्फटिकमणि के बिछाए गये हुए शिलातल की बनी भवन वेदिका के समान थे। उनके चरणों को कमल समझकर बैठे हुए भौंरे ही उनके चरणाभरण थे वहाँ इन्द्रनील मणियों के नूपुर निष्फल थे। नूपुर की आवाज से खिंचे हुए भवन के कलहंस ही उनके घूमने के लिए योग्य साथी बनते केवल ऐश्वर्य के प्रदर्शन के लिए उनके साथ परिजन रहा करते थे।[१]

सम्राट प्रभाकर वर्धन की वंशपरम्परा के विषय में बाण लिखता है कि 'तत्र च धासावसहस्राक्ष इव सर्ववर्णधरं धनुर्दधान, मेरुमय इव कल्याणप्रकृतिस्थे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम् आकाशमय इव शब्द प्रादुर्भावे शशिमय इव कलासंग्रहे वेदमय इवाकृत्रिमालापस्थे, धरणिमय इव लोकभृतिकरणे, पवनमय इव सकलप्राणिवर्गजीविकाहरणे गुरुर्वचसि, पृथुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे, शूर शूरसेनाक्रमेण, दक्षः प्रजाकर्मणि, सर्वादिराज तेजः पुञ्जनिर्मित इव राजा पुष्यभूतिरिति नाम्ना बभूव।[२]

स्थाण्वीश्वर में पुष्यभूति नामक एक राजा हुआ। जैसे इन्द्र विविध प्रकार के वर्णों वाला धनुष धारण करता है उसी प्रकार उसने समस्त ब्राह्मण आदि वर्णों के नियमार्थ

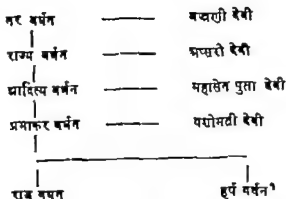
(१) महाकवि बाणभट्ट एवं हर्षचरित सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ ११८—११९।
(२) महाकवि बाणभट्ट एवं हर्षचरित तृतीय उच्छ्वास पृ० १११ ११२

धनुष धारण किया। कल्याण प्रकृति के कारण वह मानों कल्याण के सुमेरु से निर्मित था। वह लक्ष्मी के आकर्षण करने में मन्दराचल के समान मर्यादा में समुद्र के समान शब्द रूप गुण को उत्पन्न करने में आकाश के समान सारे लोक के धारण करने में पृथिवी के समान और पार्थिव राजाओं का रजोविकार दूर करने में वायु के समान कलाओं के संग्रह में चन्द्र के समान स्वाभाविक बात चीत करने में वेद के समान था। वह वाणी में बृहस्पति था यश के सम्बन्ध में पृथु राजा के समान था मन में विशाल था तपस्या करने से जनक था तेज में सुवाज नामक राजा के समान था रहस्य के सम्बन्ध में सुमन्त्र था सभा में विशाल यश में अर्जुन, धनुष में भीष्म, शरीर में अपर्याप्तहीन समर में प्रद्युम्न शुरों की सेना पर आक्रमण करने वालों में गुरु और प्रजा के कार्य करने में दक्ष प्रजापति के समान। इस प्रकार वह मानों पूर्वकाल के समस्त राजाओं की तेजराशि से निर्मित हुआ था।

राजा पुष्पभूति शैव मत के मानने वाले थे। स्वप्न में भी वह बिना शिव की पूजा किए कुछ भी खाता पीता न था। वह मानता था कि शिव के अतिरिक्त इस संसार में कोई अन्य देवता नहीं "पशुपतिप्रसन्नोऽन्यदेवता शून्यममन्यत त्रैलोक्यम्" उसकी प्रजा भी शिव की उपासना करती थी "गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशु" राजा पुष्पभूति वसिष्ठ से आए एक शैव महात्मा के प्रभाव में आ गया था। उन महात्मा का नाम भैरवाचार्य था। राजा पुष्पभूति को भैरवाचार्य ने ब्रह्मराक्षस से छीनी गई एक अट्टहास नामक कृपाण दी और प्रार्थना की कि वे वेताल साधना में मग्न सिद्धि के लिए उसकी सहायता करें। महाकवि बाण ने भैरवाचार्य और उनके शिष्य परिव्राजक सन्यासी का बड़ी कुशलता से चित्रण किया है। अथातिक्रान्तेष्वहःसु प्राप्तायां च तस्यामेव कृष्णचतुर्दश्यां तेनैव विधिना दीक्षितः क्षितिपो नियमवानभूत्।

कई दिनों के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी के दिन राजा शैव विधि से दीक्षित होकर रात को अकेला नंगी तलवार लेकर सरस्वती तट पर वहाँ पहुँचा जहाँ भैरवाचार्य वेताल सिद्धि कर रहा था। राजा ने देखा कि साधना भूमि में कुमद के पराग के समान भस्म से पुते गए महामण्डल में भैरवाचार्य उत्तान पड़े हुए शव की छाती पर बैठकर उसके मुख में अग्नि जलाकर हवन कर रहा था। वह काली पगड़ी काला अंगराग काली राखी, काला वस्त्र पहने हुए था और काले तिलों की आहुति दे रहा था। राजा ने दक्षिण दिशा में खड़े होकर पहरा देना शुरू किया। आधी रात को धरती फाड़ कर एक श्याम वर्ण का पुरुष बाहर आया। श्याम वर्ण पुरुष ने कहा कि वह श्रीकंठ नाग है और उसी के नाम से यह देश श्रीकंठ कहलाता है अतः बिना उसको बलि दिए भैरवाचार्य सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीकंठ नाग ने तीन पहरेदारों पाताल स्वामी कर्णताल और टीटिभ को मार भगाया परन्तु राजा पुष्पभूति ने उसको पराजित कर दिया। तभी एक स्त्री प्रगट हुई जो लक्ष्मी थी। लक्ष्मी ने राजा की प्रार्थना पर भैरवाचार्य की सिद्धि का वर दिया और राजा को वरदान दिया उसके वंशज प्रतापी और तेजस्वी होंगे। सम्राट प्रभाकर वर्धन राजा पुष्पभूति के वंशज ही थे। कुमार हर्ष वर्धन के पूर्ववर्ती राजाओं और उनकी रानियों के

म इस प्रकार थे।



परन्तु समस्त वर्धन कुल में सम्राट प्रभाकर वर्धन ने अधिक ख्याति प्राप्त की। उन्होंने परम भट्टारक महाराजाधिराज की उपाधियाँ धारण की थी। उन्होंने पड़ोसी राजाओं के साथ बहुत युद्ध किए। बाण ने उसका वर्णन अलंकार पूर्ण भाषा में यूं किया है। हूण हरिण केसरी सिंधुराज ज्वरो गुर्जर प्रजागर: गांधाराधिप गन्ध द्वीपकूट हस्ति ज्वरो लाट पाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मी परशु।[2] प्रभाकर वर्धन ने बहुत से यज्ञ किए, यज्ञधूमनिकाम्बर धूमलितर धूसरित बासव बमसि।[3]

सम्राट हर्षवर्धन और कुरुक्षेत्र

ईसा की मृत्यु के ६०५ वर्ष पश्चात् सम्राट प्रभाकर वर्धन का स्वर्गवास हो गया। उस समय राज वर्धन २२ वर्ष की आयु का था और हर्ष वर्धन की आयु सोलह वर्ष की थी। सम्राट की मृत्यु के समय राज वर्धन उत्तर में हूणों से युद्ध करने गया हुआ था। सम्राट की मृत्यु का समाचार पाते ही वह स्थानेश्वर वापिस आकर हर्ष वर्धन से मिला। राज वर्धन स्थानेश्वर के राजसिंहासन पर बैठा परन्तु उसी समय यह सूचना मिलने पर कि उसके बहनोई को मालव नरेश ग्रहवर्मा सुवर्णो ने मार दिया है वह कन्नौज की ओर सेना लेकर गया परन्तु धोखे से मारा गया। राज वर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्ष वर्धन ने राज-काज संभाला। छः वर्षों तक स्थानेश्वर की सेनाएं सम्राट हर्ष वर्धन के सेनापतित्व में पूर्व से पश्चिम तक दूसरे राज्यों को पराजित करती हुई और स्थानेश्वर राज्य की सीमाओं को बढ़ाती हुई घूमती रहीं। उस समय के अन्तर्गत न तो हाथियों के हौदे उतारे गए और न ही सैनिकों के शस्त्र उतरे। सम्राट हर्ष वर्धन ने भी विश्राम नहीं किया। हर्ष विजय अभियान में उसके पास ५००० हाथी २० ००० घुड़सवार ५० ०० पैदल सेना थी। छः वर्ष के पश्चात् उसने भी स्थानेश्वर में राजसूय यज्ञ किया और सम्राट की पदवी ग्रहण की।

---

(१) हर्ष संवत २२ के बंसखेड़ा के ताम्र लेख एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ४ पृष्ठ २ = संवत २५ के मधुबन वाले ताम्र एपिग्राफिया इंडिका जिल्द १ पृष्ठ ७० नालन्दा से प्राप्त मुद्रा-वर्णन बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी १६ १ पृष्ठ १ २ तथा १६३० पृष्ठ १२१ १२२। (२) हर्ष चरित प्रथम अध्याय पृष्ठ १०४। (३) हर्ष चरित लेखक वासुदेव शरण।

धनुष धारण किया। कल्याण प्रकृति के कारण वह मानों कल्याण के सुमेरु से निर्मित था। वह लक्ष्मी के आकर्षण करने में मन्दराचल के समान मर्यादा में समुद्र के समान शब्द रूप यश को उत्पन्न करने में आकाश के समान सारे लोक के धारण करने में पृथिवी के समान और पार्थिव राजाओं का रजोविकार दूर करने में वायु के समान, कलाओं के संग्रह में चन्द्र के समान स्वाभाविक बात-चीत करने में वेद के समान था। वह वाणी में बृहस्पति था यश के सम्बन्ध में पृथु राजा के समान था मन में विशाल था तपस्या करने से जनक था वेष में सुयात्र नामक राजा के समान था रहस्य के सम्बन्ध में सुमन्त्र था सभा में विद्वान यश में अर्जुन धनुष में भीष्म, शरीर में अधर्षणीय, समर में प्रद्युम्न सुरों की सेना पर आक्रमण करने वालों में गुरु और प्रजा के काम करने में दक्ष प्रजापति के समान। इस प्रकार वह मानों पूर्वकाल के समस्त राजाओं की तेजराशि से निर्मित हुआ था।

राजा पुष्पभूति शैव मत के मानने वाले थे। स्वप्न में भी वह बिना शिव की पूजा किए कुछ भी खाता पीता न था। वह मानता था कि शिव के अतिरिक्त इस संसार में कोई अन्य देवता नहीं 'पशुपतिमपरमोऽप्यदेवता शून्यममन्यत त्रैलोक्यम्' उसकी प्रजा भी शिव की उपासना करती थी "गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशु:" राजा पुष्पभूति दक्षिण से आए एक शैव महात्मा के प्रभाव में आ गया था। उन महात्मा का नाम भैरवाचार्य था। राजा पुष्पभूति को भैरवाचार्य ने महाराक्षस से छीनी गई एक अट्टहास नामक कृपाण दी और प्रार्थना की कि वे वेताल साधना में मन्त्र सिद्धि के लिए उसकी सहायता करें। महाकवि बाण ने भैरवाचार्य और उनके शिष्य परिव्राजक सन्यासी का बड़ी सूक्ष्मता से चित्रण किया है। अथातिक्रान्तेष्वहःसु प्राप्तायां च तस्यामेव कृष्णचतुर्दश्यां शैवेन विधिना दीक्षितः क्षितिपो नियमवानभूत्। ... ...

कई दिनों के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी के दिन राजा शैव विधि से दीक्षित होकर रात को अकेला नंगी तलवार लेकर सरस्वती तट पर वहाँ पहुँचा जहाँ भैरवाचार्य वेताल सिद्धि कर रहा था। राजा ने देखा कि साधना भूमि में कुमकुम के पराग के समान भस्म से पुते गए महामण्डल में भैरवाचार्य उत्तान पड़े हुए शव की छाती पर बैठकर उसके मुख में अग्नि जलाकर हवन कर रहा था। वह काली पगड़ी काला अंगराग काली राखी काला वस्त्र पहने हुए था और काले तिलों की आहुति दे रहा था। राजा ने दक्षिण दिशा में खड़े होकर पहरा देना शुरू किया। आधी रात को धरती फाड़ कर एक श्याम वर्ण का पुरुष बाहर आया। श्याम वर्ण पुरुष ने कहा कि वह श्रीकंठ नाग है और उसी के नाम से यह देश श्रीकंठ कहलाता है अत: बिना उसको बलि दिए भैरवाचार्य सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीकंठ नाग ने तीन पहरेदारों पाताल स्वामी कर्णताल और टीटिभ को मार भगाया परन्तु राजा पुष्पभूति ने उसको पराजित कर दिया। तभी एक स्त्री प्रकट हुई जो लक्ष्मी थी। लक्ष्मी ने राजा की प्रार्थना पर भैरवाचार्य को सिद्धि का वर दिया और राजा को वरदान दिया उसके वंशज प्रतापी और तेजस्वी होंगे। सम्राट प्रभाकर वर्धन राजा पुष्पभूति के वंशज ही थे। कुमार हर्ष वर्धन के पूर्ववर्ती राजाओं और उनकी रानियों के

नाम इस प्रकार थे।

नर वर्धन — वज्रणी देवी
|
राज्य वर्धन — अप्सरो देवी
|
आदित्य वर्धन — महासेन गुप्ता देवी
|
प्रभाकर वर्धन — यशोमती देवी
|
राज वर्धन, हर्ष वर्धन[1]

परन्तु समस्त वर्धन कुल में सम्राट प्रभाकर वर्धन ने अधिक ख्याति प्राप्त की। उन्होंने "परम भट्टारक महाराजाधिराज की उपाधियाँ धारण की थी। उन्होंने पड़ोसी राजाओं के साथ बहुत युद्ध किए। बाण ने उसका वर्णन अलंकार पूर्ण भाषा में यूँ किया है। हूण हरिण केसरी सिन्धुराज ज्वरो गुर्जर प्रजागरः गान्धाराधिप गन्ध द्विपकूट पाकलो लाट पाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मी परशु।[2] प्रभाकर वर्धन ने बहुत से यज्ञ किए, यज्ञसमधिकाम्बर धूमविसर धूसरित वासव वर्मणि।[3]

सम्राट हर्षवर्धन और कुरुक्षेत्र

ईसा की मृत्यु के ६०२ वर्ष पश्चात् सम्राट प्रभाकर वर्धन का स्वर्गवास हो गया। उस समय राज वर्धन २२ वर्ष की आयु का था और हर्ष वर्धन की आयु सोलह वर्ष की थी। सम्राट की मृत्यु के समय राज वर्धन उत्तर में हूणों से युद्ध करने गया हुआ था। सम्राट की मृत्यु का समाचार पाते ही वह स्थानेश्वर वापिस आकर हर्ष वर्धन से मिला। राज वर्धन स्थानेश्वर के राजसिंहासन पर बैठा परन्तु उसी समय यह सूचना मिलने पर कि उसके बहनोई को मालव नरेश कर्णसुवर्ण ने मार दिया है वह कन्नौज की ओर सेना लेकर गया परन्तु धोखे से मारा गया। राज वर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्ष वर्धन ने राज-काज संभाला। छः वर्षों तक स्थानेश्वर की सेनाएं सम्राट हर्ष वर्धन के सेनापतित्व में पूर्व से पश्चिम तक दूसरे राज्यों को पराजित करती हुई और स्थानेश्वर राज्य की सीमाओं को बढ़ाती हुई घूमती रहीं। उस समय के अन्तगत न तो हाथियों के हौदे उतारे गए और न ही सैनिकों के शस्त्र उतरे। सम्राट हर्ष वर्धन ने भी विश्राम नहीं किया। इस विजय अभियान में उसके पास ५००० हाथी २० ००० घुड़सवार ५० ०० पैदल सेना थी। छः वर्ष के पश्चात् उसने भी स्थानेश्वर में राजसूय यज्ञ किया और सम्राट की पदवी ग्रहण की।

---

(१) हर्ष सम्वत् २२ के बंसखेड़ा के ताम्र लेख एपिग्राफिआ इंडिका जिल्द ४ पृष्ठ २०८ सम्वत् २५ के मधुबन वाले ताम्र एपिग्राफिआ इंडिका जिल्द १ पृष्ठ ७० नालन्दा से प्राप्त मुहर जनरल बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी १९१९ पृष्ठ ३ २ तथा २६१ पृष्ठ २५१ २५२। (२) हर्ष चरित प्रथम उच्छ्वास पृष्ठ १०४। (३) हर्ष चरित लेखक वासुदेव शरण।

वर्धन वंश की राजधानी रहने के कारण कुरुक्षेत्र प्रदेश और उसके नागरिकों ने जीवन के विविध क्षेत्रों में उन्नति की- जैसे वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योगधन्धे शिल्प, निर्माण कला कौशल राजनीति समाजनीति, शासन व्यवस्था साहित्यकला, शिक्षा और सांस्कृतिक प्रगति जितनी वर्धन राज्य काल में स्थानेश्वर में हुई फिर कभी नहीं हो पाई। समस्त कुरुक्षेत्र प्रदेश चतुर्दिक उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। राज्य का विशाल विस्तार होने के कारण स्थानेश्वर हर्ष वर्धन के राज्य के एक कोने में हो गया। इतने विशाल साम्राज्य का सुचारु रूप से प्रबन्ध करने के लिए हर्ष वर्धन ने स्थानेश्वर से राजधानी हटा कर कन्नौज को जो राज्य के केन्द्र में था, राजधानी बना लिया। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वानसांग अथवा याग च्वाग जिसे कि इतिहासकार भ्रमणकर्ताओं का राजकुमार कहते हैं हर्ष वर्धन के शासन काल में भारतवर्ष में आया। उसने ६२६ ईस्वी से ६४५ ईस्वी तक भारतवर्ष का भ्रमण किया। स्थानेश्वर के विषय में उसने लिखा है कि—स्थानेश्वर राज्य की परिधि ७०० ली और राजधानी की परिधि २० ली थी। यहाँ की भूमि उपजाऊ है और अन्न बहुत पैदा होता है। जलवायु गरम होते हुए भी सुखकर है। लोगों का व्यवहार अत्यन्त सच्चा है और उनमें एक दूसरे के प्रति कोई भगाव अथवा अपनापन नहीं है। परिवार धनी हैं और अत्यधिक विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं। वे जादू-टोनों के बहुत अभ्यस्त हैं और साधारणतया उन लोगों का सम्मान करते हैं जो किसी भी अन्य क्षेत्र में असाधारण योग्यता रखते हैं। अधिकांश लोग मोह-माया में फँसे रहते हैं केवल बहुत थोड़े से लोग खेती-बाड़ी का कार्य करते हैं। यहाँ देश के कोने-कोने से अनमोल तथा बहुमूल्य वस्तुएं बहुत बड़ी मात्रा में बिकने आती हैं। इस प्रदेश में तीन बुद्ध विहार हैं जिनमें ७०० के लगभग भिक्षु रहते हैं। वे सब धर्मग्रन्थों का अध्ययन करते हैं और उनका प्रयोग भी करते हैं। यहाँ सौ देव-मन्दिर हैं जिनमें कई प्रकार के साधु बहुसंख्या में रहते हैं। राजधानी के चारों ओर २०० ली के दायरे को यहाँ के लोग धार्मिक स्थान कहते हैं।'[1]

ऐसा जान पड़ता है कि ह्वानसांग को महाभारत युद्ध की कथा ज्ञात नहीं थी और न ही उसने किसी से सुनी एवं पढ़ी थी। महाभारत युद्ध का जो वर्णन उसने लिखा है वह बिलकुल ही बे सिर-पैर का है। महाभारत युद्ध के विषय में वह लिखता है कि—'पुराने समय में पाँच नदियों के देश में दो राजा थे। उन्होंने इस प्रदेश को दो भागों में बाँट लिया था। वह निरन्तर एक दूसरे की सीमाओं पर आक्रमण करते रहते थे। उनका युद्ध कभी अन्त नहीं होता था। अन्त में दोनों राजाओं का यह समझौता हो गया कि वे कुछ सैनिक छाँट लें जो लड़कर निर्णय कर लें जिससे कि प्रजा को आराम मिले। परन्तु अधिक जन संख्या इस सुझाव के विरुद्ध थी उन्होंने निर्णय का यह ढंग नहीं माना। तब इस देश के राजा ने सोचा कि प्रजा को प्रसन्न करना बहुत कठिन है। कोई ईश्वरीय शक्ति प्रजा की विचारधारा मोड़ सकती है। सम्भवतः कोई और युक्ति प्रजा को ठीक मार्ग पर ले आए।

उस समय वहाँ एक विद्वान और चतुर ब्राह्मण था। उसको चुपचाप राजा ने कई रेशम के थान इस प्रार्थना के साथ भेंट किए कि वह राजा के निजी महल में बैठकर एक

---

१ ह्वानच्वांग अनुवादक [illegible] ।

धार्मिक पुस्तक लिखे जो पर्वत की गुफा में छुपा दी जाएगी। कुछ समय के पश्चात् जब गुफा पर वृक्ष उग आए तो राजा ने राजसिंहासन पर बैठकर अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा कि मैं अपने अल्प ज्ञान पर लज्जित होता हुआ कि मैं इतने ऊँचे स्थान पर बैठा हूँ, कहता हूँ कि ईश्वर ने प्रसन्न होकर स्वप्न में यह भेद मुझे बताया है कि एक ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक अमुक पर्वत पर अमुक गुफा में रखी है। राजा ने आज्ञा दी कि पुस्तक खोजी जाए और गुफा में झाड़ियों के नीचे पुस्तक मिल गई। मन्त्रियों ने राजा को बधाई दी और प्रजा ने खुशियाँ मनाईं। राजा ने दूर-दूर तक पुस्तक के मिलने की सूचना दी। राजा ने आज्ञा दी कि पुस्तक में जो लिखा है उसे समझाया जाए। संक्षेप में पुस्तक की बात इस प्रकार है—मृत्यु और जीवन असीमित हैं आवागमन का अन्त नहीं। ब्रह्मज्ञान के बिना निस्तार नहीं परन्तु एक विशेष साधना से मनुष्य इन दुखों से बच सकता है। इस नगर के चारों ओर २०० ली की परिधि को धार्मिक स्थान कहा है। पुराने समय के राजाओं ने भी इस बात को माना है। बहुत वर्ष बीत जाने पर यह चिह्न मिट गए। धार्मिक जीवन व्यतीत न करने से मनुष्य लाचार होकर दुखों के समुद्र में डूब गया। यह बात सब जान लें कि आप में से जो शत्रु-सेना पर आक्रमण करेगा और युद्ध में मर जाएगा वह फिर मनुष्य रूप में जन्म लेगा। जो बहुत से शत्रुओं को मारेगा उसे स्वर्ग मिलेगा। वह आज्ञाकारी पुत्र व पौत्र जो अपने वृद्ध माता पिता की सहायता इस भूमि में यात्रा करने में करेगा वह असीम सुख पाएगा। जो यह सुअवसर खो देंगे वे मृत्यु के पश्चात् अन्धकार में डाले जाएँगे। अतः प्रत्येक व्यक्ति शुभकार्य करने को तैयार रहे।

यह सुनकर और मृत्यु को निर्वाण मार्ग समझकर लोग युद्ध को तैयार हो गए। राजा ने अपने योद्धाओं को बुलाया। दोनों देशों में युद्ध आरम्भ हो गया। मृतकों के ढेर लकड़ियों की भाँति लग गए। उस समय से अब तक यह मैदान हड्डियों से ढका हुआ है। यह इस देश का पुराना इतिहास है। अतः यह भूमि धर्म-भूमि कहलाती है।

इसके पश्चात् ह्वानसांग ने स्थानेश्वर का यह वर्णन किया— नगर के उत्तर पश्चिम कोण पर ४ अथवा ५ ली दूर ३०० फीट ऊँचा स्तूप है जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था। यह स्तूप चमकती हुई पीली और लाल ईंटों से बना हुआ है। स्तूप की चोटी पर महात्मा बुद्ध के अवशेष रखे हैं। सदा-सर्वदा स्तूप से चमकता हुआ प्रकाश निकलता है और महात्मा दर्शन देते हैं। नगर के दक्षिण में १०० ली दूर हम एक आश्रम में जिसका नाम गौकण्ठ है आते हैं। यहाँ बहुत से ऊँचे स्तूप हैं जिनमें असंख्य मकान हैं उनके बीच में घूमने-फिरने के स्थान हैं। पुजारी लोग सुखी हैं उनका व्यवहार सुन्दर और गौरवपूर्ण है। यहाँ से उत्तर-पूर्व में ४०० ली दूर जाने पर हम सुघ्नहला देश में आते हैं।[1]

---

१ सी-यू-की, बुद्ध रिकार्ड्स ऑफ वेस्टर्न वर्ल्ड पुस्तक, ४ पृष्ठ १८३ से १८५ तक, ह्वेनसांग की चीनी जीवन-कथा (६४६ ईस्वी) का सैमुअल बील द्वारा अनुवाद। हिस्टोरिकल ज्योग्राफी आफ थानेश्वर डिस्ट्रिक्ट लेखक शीतल प्रसाद पृष्ठ १ १।

हर्ष वर्धन के पश्चात् का कुरुक्षेत्र

सम्राट हर्ष वर्धन के कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ, अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् भारतवर्ष पर एक बार फिर अन्धकार छा गया। कुरुक्षेत्र प्रदेश पर इस अन्धकार का भयंकर प्रभाव पड़ा। कला साहित्य सभ्यता और संस्कृति अन्धकार में नहीं पनपते। जब इस अन्धकार का काला पर्दा उठा तो भारतवर्ष का चित्र बिलकुल बदल गया था। बौद्ध धर्म भ्रम रेखा सा बन चुका था। समस्त उत्तर भारत छोटे छोटे राज्यों में बंट गया था और इन राज्यों पर विभिन्न प्रकार के राजा राज्य करते थे। इन राजाओं और भारतवर्ष की परम्परा और संस्कृति का दूर का भी नाता नहीं था। हर्ष वर्धन के शासन काल के नागरिकों और इस काल के नागरिकों और राजाओं में धरती और आकाश का अन्तर था। इस काले पर्दे के युग में मध्य एशिया से हूण गुर्जर और अन्य लड़ाकू जातियों ने आकर उत्तर भारत पर अपना अधिकार कर लिया। इन जंगली लोगों के आगमन से कुरुक्षेत्र का सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक और शिक्षा-दीक्षा का ढांचा हवा में तृण के समान उड़ गया।

भारतवर्ष में चारों ओर युद्ध ही युद्ध हो रहे थे। घोर अशान्ति और भयानक अराजकता का युग था वह। कला और संस्कृति के अंकुर शान्तिमय वातावरण में फूटते हैं रक्तसिंचित धरातल पर कला और संस्कृति के पुष्प मुरझा कर सूख जाते हैं। इसलिए कुरुक्षेत्र का गौरव जिस कला और संस्कृति से था वह इस युग में प्राण छोड़ गया और उसने ऐसे प्राण छोड़े कि फिर लाखों प्रयत्न भी इसमें जीवन-संचार नहीं कर सके। कुरुक्षेत्र की उन्नति में मौर्य गुप्त और वर्धन राजाओं का बड़ा हाथ था और ऐसे प्रतापी सम्राटों का आश्रय फिर कभी भविष्य में कुरुक्षेत्र को नहीं मिला। पूरी एक शताब्दी तक गुप्त और वर्धन वंश के राजाओं की कृपा और आश्रय पर कुरुक्षेत्र का गौरव युवा होता रहा। इसकी ख्याति इन काल में देश देशान्तरों में फैली और यहाँ हुए अनेकानेक यज्ञों के धुएं की सुगन्ध से सारा उत्तर भारत सुगन्धित हुआ। इन राज्यों के मिटने के साथ-साथ कला और साहित्य कुरुक्षेत्र से सदैव के लिए विदा हो गए।

कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य का आगमन

इस भयानक काल में भी कुरुक्षेत्र का धार्मिक महत्व कम नहीं हुआ। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में कुमारिल भट्ट जिन्होंने मीमांसा-दर्शन का प्रचार देश भर में फैलाकर बौद्ध धर्म की जड़ों को भारतवर्ष से उखाड़ फेंका था देशाटन करते हुए कुरुक्षेत्र पधारे थे। एक शताब्दी पश्चात् नवीं शताब्दी में जगद् गुरुस्वामी शंकराचार्य जी ने भारत यात्रा वेदान्त-दर्शन के प्रचारार्थ की और अमरनाथ जाते हुए वह भी कुरुक्षेत्र आए थे और प्रवचन दिया था। उस स्थान पर उनकी स्मृति में पाषाण प्रतिमा स्थापित है।

सुलतान महमूद गज़नवी और कुरुक्षेत्र

दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्तर भारत के यह छोटे-छोटे राज्य जो अब तक विदेशी आक्रमणों से अनभिज्ञ थे मुसलमानों के उत्तरी-पश्चिमी घाटियों से होने वाले

आक्रमणों से बचता रहे। १०१४ ईस्वी में सुलतान महमूद गजनवी ने कुरुक्षेत्र प्रदेश के धार्मिक और धनवान नगर स्थानेश्वर पर आक्रमण किया। सुलतान की आज्ञा से समस्त मन्दिरों और नगर को राख और अग्नि से जलाकर भूमिसात कर दिया। वह हजारों स्त्री पुरुषों को पकड़ कर गजनी ले गया और उन्हें दो-दो दरम में बेच दिया। मन्दिरों को उसने मसजिदों में परिणत कर दिया। महमूद ने जो हानि स्थानेश्वर को पहुँचाई उसका वर्णन विस्तार से फरिश्ता और उत्बी ने किया है। अलबरूनी जो कि गणिताचार्य, ज्योतिषशास्त्र में प्रवीण और विद्वान था महमूद के साथ भारत में आया था। अलबरूनी ने स्थानेश्वर को धार्मिक केन्द्र कहा है। महमूद गजनवी ने भारत पर १७ आक्रमण किए। उसके यह आक्रमण कुरुक्षेत्र प्रदेश के लिए अत्यन्त घातक और यमदूत थे क्योंकि उसके अधिकांश आक्रमण कुरुक्षेत्र के मार्ग से ही हुए, इसलिए कुरुक्षेत्र प्रदेश को भारी हानि उठानी पड़ी। महमूद भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा शत्रु था।" स्थानेश्वर हिन्दुओं का काबा है।[1]

कुरुक्षेत्र अतीत से ही ब्राह्मण धर्म का केन्द्र रहा है। ब्राह्मण धर्मशास्त्रों के फूँकने और जलने से कुरुक्षेत्र के इतिहास को बहुत क्षति पहुँची स्थानेश्वर की महमूद गजनवी के हाथों बरबादी की घटना मुहम्मद क़ासिम फरिश्ता इस प्रकार लिखता है—"४०२ हिजरी १०१४ ईस्वी में सुलतान महमूद के दिल में फिर जहाद (धर्मयुद्ध) की लहर उठी। क्योंकि महमूद सुन चुका था कि थानेश्वर हिन्दुओं का काबा है और वहाँ एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें बहुत सी मूर्तियां रखी हुई हैं और बड़ी मूर्ति का नाम जगसोम है। इस बड़ी मूर्ति के विषय में हिन्दुओं का विश्वास है कि इसका अस्तित्व संसारोत्पत्ति के साथ साथ ही हुआ है इसलिए महमूद ने संकल्प किया कि इस बार थानेश्वर पर आक्रमण करे। जब इस आक्रमण के लिए महमूद ने पंजाब में प्रवेश किया तो केवल इस विचार से कि जो सन्धि महमूद और आनन्दपाल के बीच हुई है उसका खंडन न हो। सुलतान ने एक दूत आनन्दपाल के पास भेजकर उस पर अपना विचार प्रगट किया और कहला भेजा कि अब की बार हमारा संकल्प थानेश्वर पर आक्रमण करने का है और क्योंकि पंजाब से थानेश्वर तक मार्ग की सब कठिनाइयां दूर करनी हैं इसलिए तुम अपने कुछ विश्वसनीय आदमी हमारे साथ कर दो जिससे कि जो परगना (ग्राम) तुम्हारा हो वह हमारी सेना के विध्वंस और लूटमार से बचा रहे।

आनन्दपाल ने इस आज्ञा को अपने धन की रक्षा का कारण समझकर सुलतान के खान-पान और आतिथ्य की समस्त सामग्री का प्रबन्ध शीघ्रातिशीघ्र कर दिया और अपने राज्य के व्यापारियों और बनियों को आज्ञा दी कि अनाज घी, तेल और प्रत्येक प्रकार की सुविधा की सामग्री सुलतानी शिविर में पहुँचा दी जाए और सुलतान की सेना को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए। राजा आनन्दपाल ने अपने भाई को एक प्रार्थना-पत्र देकर दो हजार अश्वारोहियों के नेतृत्व में सुलतान की सेवा में भेजा। प्रार्थना-पत्र का सारांश यह था कि मैं हर प्रकार आपकी आज्ञा मानने के लिए प्रस्तुत हूँ और आपका सच्चा सेवक हूँ परन्तु

---

१ कलकत्तीय इरिक्या लेखक डा० बलवंत सीं० सेवु पृष्ठ १० अंतेक।

हर्ष वर्धन के पश्चात् का कुरुक्षेत्र

सम्राट् हर्ष वर्धन के कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ, अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् भारतवर्ष पर एक बार फिर अन्धकार छा गया। कुरुक्षेत्र प्रदेश पर इस अन्धकार का भयंकर प्रभाव पड़ा। कला साहित्य सभ्यता और संस्कृति अन्धकार में नहीं पनपते। जब इस अन्धकार का काला पर्दा उठा तो भारतवर्ष का चित्र बिलकुल बदल गया था। बौद्ध धर्म बस रेखा सा बन चुका था। समस्त उत्तर भारत छोटे छोटे राज्यों में बंट गया था और इन राज्यों पर विभिन्न प्रकार के राजा राज्य करते थे। इन राजाओं और भारतवर्ष की परम्परा और संस्कृति का दूर का भी नाता नहीं था। हर्ष वर्धन के शासन काल के नागरिकों और इस काल के नागरिकों और राजाओं में धरती और आकाश का अन्तर था। इस काले पर्दे के युग में मध्य एशिया से हूण, गुर्जर और अन्य लड़ाकू जातियों ने आकर उत्तर भारत पर अपना अधिकार कर लिया। इन जंगली लोगों के आगमन से कुरुक्षेत्र का सामाजिक राजनैतिक धार्मिक और शिक्षा-दीक्षा का ढांचा हवा में तृण के समान उड़ गया।

भारतवर्ष में चारों ओर युद्ध ही युद्ध हो रहे थे। घोर अशान्ति और भयानक अराजकता का युग था वह। कला और संस्कृति के अंकुर शान्तिमय वातावरण में फूटते हैं रक्तसिंचित धरातल पर कला और संस्कृति के पुष्प मुरझा कर सूख जाते हैं। इसलिए कुरुक्षेत्र का गौरव जिस कला और संस्कृति से था वह इस युग में प्राण छोड़ गया और उसने ऐसे प्राण छोड़े कि फिर लाखों प्रयत्न भी इसमें जीवन-संचार नहीं कर सके। कुरुक्षेत्र की उन्नति में मौर्य गुप्त और वर्धन राजाओं का बड़ा हाथ था और ऐसे प्रतापी सम्राटों का आश्रय फिर कभी भविष्य में कुरुक्षेत्र को नहीं मिला। पूरी एक शताब्दी तक गुप्त और वर्धन वंश के राजाओं की कृपा और आश्रय पर कुरुक्षेत्र का गौरव पुष्ट होता रहा। इसकी ख्याति इस काल में देश देशान्तरों में फैली और यहां हुए अनेकानेक यज्ञों के धुएं की सुगन्ध से सारा उत्तर भारत सुगन्धित हुआ। इन राज्यों के मिटने के साथ-साथ कला और साहित्य कुरुक्षेत्र से सदैव के लिए विदा हो गए।

कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य का आगमन

इस अराजक काल में भी कुरुक्षेत्र का धार्मिक महत्त्व कम नहीं हुआ। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में कुमारिल भट्ट जिन्होंने मीमांसा-दर्शन का प्रचार देश भर में फैलाकर बौद्ध धर्म की जड़ों को भारतवर्ष से उखाड़ फेंका था देशाटन करते हुए कुरुक्षेत्र पधारे थे। एक शताब्दी पश्चात् नवीं शताब्दी में जगद् गुरुस्वामी शंकराचार्य जी ने भारत माता वेदान्त-दर्शन के प्रचारार्थ की और अमरनाथ जाते हुए वह भी कुरुक्षेत्र आए थे और प्रवचन दिया था। उस स्थान पर उनकी स्मृति में पाषाण-प्रतिमा स्थापित है।

सुलतान महमूद गज़नवी और कुरुक्षेत्र

दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्तर भारत के वह छोटे-छोटे राज्य जो अब तक विदेशी आक्रमणों से अनभिज्ञ थे मुसलमानों के उत्तरी-पश्चिमी जातियों से होने वाले

आक्रमणों से घबरा उठे। १०१४ ईसवी में सुलतान महमूद गजनवी ने कुरुक्षेत्र प्रदेश के धार्मिक और धनवान नगर स्थानेश्वर पर आक्रमण किया। सुलतान की आज्ञा से समस्त मन्दिरों और नगर को राख और अग्नि से जलाकर भूमिसात कर दिया। वह हजारों स्त्री पुरुषों को पकड़ कर गजनी ले गया और उन्हें दो-दो दरम में बेच दिया। मन्दिरों को उसने मसजिदों में परिणत कर दिया। महमूद ने जो हानि स्थानेश्वर को पहुँचाई उसका वर्णन विस्तार से फरिश्ता और उत्बी ने किया है। अलबरूनी जो कि गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र में प्रवीण और विद्वान था महमूद के साथ भारत में आया था। अलबरूनी ने स्थानेश्वर को धार्मिक केन्द्र कहा है। महमूद गजनवी ने भारत पर १७ आक्रमण किए। उसके यह आक्रमण कुरुक्षेत्र प्रदेश के लिए अत्यन्त घातक और अमङ्गल थे, क्योंकि उसके अधिकांश आक्रमण कुरुक्षेत्र के मार्ग से ही हुए, इसलिए कुरुक्षेत्र प्रदेश को भारी हानि उठानी पड़ी। महमूद भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा शत्रु था।" स्थानेश्वर हिन्दुओं का काबा है।[1]

कुरुक्षेत्र अतीत से ही ब्राह्मण धर्म का केन्द्र रहा है। आक्रमण धर्मशास्त्रों के फूँकने और जलाने से कुरुक्षेत्र के इतिहास को बहुत क्षति पहुँची। स्थानेश्वर की महमूद गजनवी के हाथों बरबादी की घटना मुहम्मद क़ासिम फरिश्ता इस प्रकार लिखता है— '४०२ हिजरी १०१४ ईसवी में सुलतान महमूद के दिल में फिर जहाद (धर्मयुद्ध) की लहर उठी। क्योंकि महमूद सुन चुका था कि थानेसर हिन्दुओं का काबा है और वहाँ एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें बहुत सी मूर्तियाँ रखी हुई हैं और बड़ी मूर्ति का नाम जगसोम है। इस बड़ी मूर्ति के विषय में हिन्दुओं का विश्वास है कि इसका अस्तित्व संसारोत्पत्ति के साथ साथ ही हुआ है इसलिए महमूद ने संकल्प किया कि इस बार थानेसर पर आक्रमण करे। जब इस आक्रमण के लिए महमूद ने पंजाब में प्रवेश किया तो केवल इस विचार से कि जो सन्धि महमूद और आनन्दपाल के बीच हुई है उसका खंडन न हो। सुलतान ने एक दूत आनन्दपाल के पास भेजकर उस पर अपना विचार प्रकट किया और कहला भेजा कि अब की बार हमारा संकल्प थानेसर पर आक्रमण करने का है और क्योंकि पंजाब से थानेसर तक मार्ग की सब कठिनाइयाँ दूर करनी हैं इसलिए तुम अपने कुछ विश्वसनीय आदमी हमारे साथ कर दो जिससे कि जो परगना (ग्राम) तुम्हारा हो वह हमारी सेना के विध्वंस और लूटमार से बचा रहे।

आनन्दपाल ने इस आज्ञा को अपने धन की रक्षा का कारण समझकर सुलतान के खान-पान और आतिथ्य की समस्त सामग्री का प्रबन्ध शीघ्रातिशीघ्र कर दिया और अपने राज्य के व्यापारियों और बनियों को आज्ञा दी कि अनाज भी बेचें और प्रत्येक प्रकार की सुविधा की सामग्री सुलतानी शिविर में पहुँचा दी जाए और सुलतान की सेना को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए। राजा आनन्दपाल ने अपने भाई को एक प्रार्थना-पत्र देकर दो हजार अश्वारोहियों के नेतृत्व में सुलतान की सेवा में भेजा। प्रार्थना-पत्र का सारांश यह था कि मैं हर प्रकार आपकी आज्ञा मानने के लिए प्रस्तुत हूँ और आपका सच्चा सेवक हूँ परन्तु

१ अलबरूनीज इण्डिया लेखक डा० एडवर्ड सी० सैचु पृष्ठ १७ [illegible]।

इस सेवकाई और श्रद्धा के भरोसे जो मुझे सुलतान से है यह प्रार्थना करने का साहस करता हूँ कि थानेसर का मन्दिर बहुत पूजनीय है, यह सत्य है कि आपके धर्म में मूर्तियां तोड़ना पापों से छुटकारा पाने का साधन और पुण्यकर्म है परन्तु यह बात तो किला नगर कोट की मूर्ति तोड़ने से आपको प्राप्त हो गई है। थानेसर के मन्दिर के विषय में मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आप इसके विध्वंस की अपेक्षा कोई बहुतायी धन ले लें और थानेसर की जनता को वार्षिक करदाता बनाकर अपने देश लौट जाने की कृपा करें तो आपका यह सेवक इस प्रार्थना के मानने के फलस्वरूप धन्यवाद सहित प्रतिवर्ष पचास हाथी और अन्य बहुमूल्य भेंट सुलतान की सेवा में भेजता रहेगा।

सुलतान ने उत्तर दिया कि हम मुसलमानों का यह अटूट विश्वास है कि इस्लाम धर्म को फैलाने और हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराने में हम यहां जितना प्रयत्न करेंगे उतना ही परलोक में हमें उसका पुण्य मिलेगा। जब हमारा संकल्प यही है कि हम मूर्तिपूजा हिन्दुस्तान से मिटा दें तो यह कैसे सम्भव है कि हम थानेसर जैसे मूर्तिपूजा के केन्द्र स्थान को बरबाद न करें और मन्दिरों को तोड़ने का सुविचार छोड़ दें। जब राजा देहली ने यह समाचार सुना तो वह भी अपनी पूरी शक्ति सहित मुसलमानों का सामना करने को तैयार हुआ और हिन्दुस्तान के कोने कोने में शीघ्रातिशीघ्र यह समाचार फैलाया कि महमूद गजनवी असंख्य सेना लेकर मेरे राज्य के प्रसिद्ध मन्दिर पर आक्रमण करने वाला है। यदि हम पहले से ही इस भयानक बाढ़ को रोकने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो यह विपत्ति देश के प्रत्येक कोने में फैलकर छोड़े और बढ़ सबको बरबाद कर देगी। मेरी यह सम्मति है कि हम सब मिल जुल कर इस संकट को दूर करें। परन्तु इससे प्रथम कि हिन्दुओं की सेनाएं एक स्थान पर एकत्रित हों सुलतान महमूद थानेसर पहुँच गया। नगर को अरक्षित देखकर मुसलमानों ने दिल खोलकर लूटमार, बरबादी और विध्वंस किया। महमूद ने समस्त मूर्तियों को तोड़ डाला और बड़ी मूर्ति जगसोम को गजनी भेज दिया और आज्ञा दी कि यह मूर्ति चौपथ पर रख दी जाए जिससे कि चलने वालों के पाँवों के नीचे पिसकर बिलकुल धूल बन जाए। इतिहासकार कंधारि के कथनानुसार थानेसर के एक मन्दिर से एक टुकड़ा लाल याकूत का भी महमूद के हाथ लगा जिसका वजन साढ़े चार सौ मिसकाल था। इतिहासकार लिखते हैं कि इस प्रकार का जवाहर आज दिन तक देखने अथवा सुनने में नहीं आया। इस विजय के पश्चात् महमूद ने इरादा किया कि देहली को भी विजय कर लिया जाए। परन्तु मंत्रियों ने प्रार्थना की कि देहली पर उस समय तक विजय प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि समस्त पंजाब मुसलमानों के अधिकार में नहीं आ जाता और आसपास की ओर से कोई भय शेष न रहे। महमूद ने मंत्रियों के परामर्श को मानकर देहली के विजय करने का विचार छोड़ दिया और गजनी वापिस चला गया। महमूद लगभग दो लाख भारतीय स्त्री और पुरुषों को दास बनाकर अपने साथ ले गया। इतिहासकार लिखते हैं कि इन भारतीय दासों की यह संख्या से वहां इतनी हिन्दुस्तानी शक्लें दिखाई देती थीं कि उस वर्ष गजनी भी हिन्दुस्तान का एक नगर समझा जाता था। सुलतानी सेना का प्रत्येक सैनिक कई-कई स्त्रियों और पुरुष दासों का स्वामी हो गया"।[1]

---

१ तारीखे-फरिश्ता पृष्ठ ८१ से ८४ प्रथम भाग।

प्रोफेसर डी० सी० गंगोली के अनुसार महमूद गजनवी ने इस कारण थानेसर पर आक्रमण किया कि उसे यह सूचना मिली थी कि थानेसर में लंका की नस्ल के हाथी हैं जो सैनिक महत्त्व के लिए लाभदायक हैं। महमूद अपनी थानेसर आक्रमण यात्रा के बीच एक नदी पर पहुँचा जहाँ डेरा के राजाराम ने उसका सामना किया। राजाराम भी धार्मिक नगर थानेसर को बरबादी से बचाना चाहता था। कुछ लोगों का यह मत है कि यमुना नदी पर राजाराम ने महमूद से मुठभेड़ की थी। नदी का बहाव घाटियों के बीच बहुत तेज था। नदी के किनारे दलदल और तथा पत्थरों से भरा हुआ था। राजाराम अपने हाथियों घुड़सवारों और पैदल सैनिकों के साथ नदी के पास मोर्चा लगा कर युद्ध के लिए तैयार हो गया। सुलतान की कमान के नीचे मुसलमानों की दो सैनिक टुकड़ियों ने नदी पार की और शत्रु पर दोनों ओर से आक्रमण कर दिया। जब युद्ध गर्म था तो महमूद की तीसरी सैनिक टुकड़ी ने बहाव की ओर आगे बढ़ कर नदी को पार किया और शत्रुओं पर टूट पड़े। सायंकाल तक घोर युद्ध चलता रहा अचानक हिन्दू रणक्षेत्र छोड़कर भाग निकले और उनके हाथी मैदान में रह गए। इस विजय के पश्चात् महमूद थानेसर की ओर अग्रसर हुआ।[1]

उत्बी ने महमूद के थानेसर पर आक्रमण का विवरण बहुत अधूरा दिया है। महमूद के नन्दोना पर आक्रमण के पश्चात् जो कि ४०४ हिजरी १०११ ईस्वी में हुआ थानेसर के आक्रमण का विवरण उत्बी ने दिया। ईबनुल अतहर महमूद के थानेसर पर किए गए आक्रमण को ४०५ हिजरी १०१४ ईस्वी में लिखता है। परन्तु गारदिजी जो उसी समय का इतिहासकार था थानेसर के आक्रमण को ४०२ हिजरी १०११ ईस्वी में हुआ कहता है। गारदिज के अनुसार थानेसर पर महमूद का आक्रमण नन्दोना के आक्रमण से तीन वर्ष पहले हुआ। इस बात का समर्थन फरिश्ता और नजामुद्दीन अहमद भी करते हैं। परन्तु ईलीयट डब्लू० हेग और एम० नाजीम यह तीन इतिहासकार उत्बी के विवरण को ठीक बताते हैं। डब्लू० हेग का कथन है कि अल उत्बी के थानेसर पर महमूद के आक्रमण के विवरण में कुछ त्रुटि अवश्य है। ऐसा जान पड़ता है कि अल उत्बी ने किसी और स्थान पर किए गए आक्रमण को थानेसर के आक्रमण से मिला दिया है। अल उत्बी के उलझे हुए मन का इस बात से भी पता चलता है कि वह अपने विवरण को अचानक उस समय समाप्त कर देता है जब थानेसर के आक्रमण से पहले मार्ग में महमूद का राजाराम से युद्ध हुआ। अतः थानेसर पर महमूद के आक्रमण की जो तिथि गारदिजी फरिश्ता और नजामुद्दीन अहमद ने दी है वह ही सर्वमाननीय है।

"४३४ हिजरी १०४३ ईस्वी में देहली और समस्त हिन्दुस्तान के हिन्दू राजाओं ने संगठन करके थानेसर पर फिर अधिकार कर लिया। उन्होंने महमूद के लड़के मादूद द्वारा नियुक्त थानेसर के गवर्नर और गजनी के मुसलमान सैनिकों को नगर से बाहर निकाल दिया। देहली का तोमर राजा इस सैनिक संगठन का नेता था। राजा परमार

1 डी० सी० गंगोली, एम० ए० पी-एच० डी०, सेकेंड्री विक्टोरिया मेमोरियल हाल, कलकत्ता, स्ट्रगल फॉर पावर, सम्पादित आर० सी० मजूमदार, पृ० १०।

भोज कमाऊँनी कर्ण और चाचा माना अनाहिला भी इस संगठन में सम्मिलित थे। हिन्दुओं ने थानेश्वर नगर को फिर मूर्ति-पूजा का तीर्थ बनाया और नगर में स्थान-स्थान पर मूर्तियाँ स्थापित करके मूर्ति-पूजा आरम्भ कर दी।"[1]

पृथ्वीराज चौहान, मुहम्मद गौरी और कुरुक्षेत्र

सरस्वती नदी दिल्ली राज्य की सीमा बन गई और कुरुक्षेत्र प्रदेश दिल्ली राज्य का सीमावर्ती प्रान्त बन गया। ११११ ईस्वी में कुरुक्षेत्र प्रदेश दिल्ली के राजा अनंगपाल तोमर के अधीन हो गया। सरस्वती नदी के उत्तर का पंजाब प्रान्त भिन्न-भिन्न मुसलमान गवर्नरों के अधीन था। इतिहास में सीमावर्ती प्रदेश सदैव अशान्ति का प्रदेश होता है और क्योंकि कुरुक्षेत्र न केवल दिल्ली राज्य की सीमा पर था, बल्कि स्वयं सीमा था इसलिए यहाँ कला संस्कृति और धर्म का विकास होना असम्भव हो गया। राजा अनंगपाल के कोई पुत्र न होने के कारण उसकी मृत्यु के पश्चात् दिल्ली का राज्य सांभर और अजमेर के चौहानों के हाथ आया। प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान जिसे कि इतिहासकार राए पिथौरा भी कहते हैं राजा अनंगपाल का दौहित्र था जो अनंगपाल के पश्चात् दिल्लीपति हुआ। पृथ्वीराज चौहान के शासनकाल में कुरुक्षेत्र में शांति रही। दन्तकथाओं के अनुसार मुहम्मद गौरी ने दिल्ली राज्य पर अनेक बार आक्रमण किए, परन्तु प्रत्येक बार हिन्दू राजाओं ने पृथ्वीराज के सेनापतित्व में कुरुक्षेत्र प्रदेश में सरस्वती तट पर मुहम्मद गौरी को पराजित किया।

५८७ हिजरी ११९१ ईस्वी में शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने भटिंडे पर आक्रमण करके उसे अजमेर के राजा से छीन लिया और वहाँ का राज्य मलिक बहाउद्दीन टोंकी के संरक्षण में छोड़कर बारह हजार मुसलमान सैनिकों के साथ वापिस गौर जाने के लिए तैयार हुआ। अभी उसने घोड़े की रकाब में पाँव ही रखा था कि उसे सूचना मिली कि राय पिथौरा (पृथ्वीराज) अपने भाई दिल्ली के राजा खाण्डेराय से मिल गया है और इन दोनों ने हिन्दुस्तान के अन्य हिन्दू राजाओं को भी अपने साथ सहमत कर लिया है कि मुहम्मद गौरी का सामना किया जाए। सब हिन्दू राजाओं को साथ लेकर पिथौरा और खाण्डेराय *दो लाख घुड़सवारों और तीन सौ हाथियों की भारी सेना के साथ भटिंडे के किले पर अधि*कार करने के लिए आ रहे हैं। यह सूचना मिलने पर मुहम्मद गौरी ने अपने जाने का इरादा छोड़ दिया और सेना लेकर पिथौरा से लड़ने के लिए आगे बढ़ा। सरस्वती नदी के तट पर तरायण नाम के स्थान पर जो आजकल के तरावड़ी नगर के आस-पास ही कहीं था दिल्ली से चालीस मील के अन्तर पर दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। जब युद्ध गर्म होकर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा तो हिन्दू सेना के आक्रमण के जोर के आगे मुसलमान सैनिकों के पाँव उखड़ गये। शहाबुद्दीन की सेना के दाएँ और बाएँ भाग समाप्त हो गए, केवल बीच में कुछ सैनिक शेष रह गए। मुसलमान सैनिकों की अस्त-व्यस्त दशा

---

[1] तारीखे-फरिश्ता पृ. १८८—१९० प्रथम भाग। हिन्दी भाग परमार राजवंश पृ. १०१।

देखकर शहाबुद्दीन के एक अमीर ने उससे कहा कि हमारी सेना के दाएँ और बाएँ बाजू जिसमें गौर के सैनिक थे घबराकर युद्ध स्थल से भाग गए हैं। इराकस की अफगानी और खिलजी सेना जो सर्वत्र विजय प्राप्त करती थीं रणांगन में पाँव नहीं जमा पा रही हैं। मेरी सम्मति में सम्राट भी अब युद्ध-भूमि से किनारा करके लाहौर की ओर कूच करें। शहाबुद्दीन को इस अमीर की राय पसन्द नहीं आई और उसने हिम्मत से काम लिया। बीच के सैनिकों को साथ लेकर शहाबुद्दीन ने जोरदार आक्रमण किया। इस युद्ध में शहाबुद्दीन ऐसी हिम्मत दिखाता रहा कि मित्र और शत्रु दोनों उसकी प्रशंसा कर रहे थे। शहाबुद्दीन युद्ध में संलग्न हुआ ही था कि अचानक दिल्ली के राजा चामुंडराय की दृष्टि उस पर पड़ी। चामुंडराय ने अपना हाथी शहाबुद्दीन की ओर बढ़ाया। शहाबुद्दीन ने भी अपना नेजा (भाला) संभाला और चामुंडराय की ओर झपटा। चामुंडराय के हाथी के निकट पहुँचकर शहाबुद्दीन ने पूरी शक्ति से हाथी के मुँह पर चोट लगाई। भाला हाथी के मुँह में घुस गया और चोट से हाथी के दाँत टूट गए। चामुंडराय ने पूरे साहस से काम लिया और हाथी पर बैठे ही बैठे शहाबुद्दीन के बाजू पर तलवार का भरपूर हाथ मारकर घाव कर दिया। इस घाव से शहाबुद्दीन चकरा गया और अचेत होकर घोड़े से गिरने ही वाला था कि एक खिलजी सैनिक बादशाह की यह दशा देखकर उसके घोड़े के पीछे बैठ गया और शहाबुद्दीन को अपनी गोद में बिठाकर युद्ध-स्थल से भागा। सैनिक शहाबुद्दीन को लेकर भागता हुआ उन भागे हुए मुसलमान सैनिकों के पास गया जो युद्ध भूमि से भागकर बीस कोस पर डेरा डाले पड़े थे। सेना में पराजय और बादशाह की गैरहाजिरी से जो कोलाहल मचा हुआ था वह कम हो गया। शहाबुद्दीन ने हिन्दुस्तान का राज्य अपने विश्वसनीय अमीरों को सौंपा और स्वयं गौर चला गया"।[१]

पेज मसलमान ने शहाबुद्दीन के युद्ध भूमि से जीवित बच निकलने की घटना इस प्रकार लिखी है कि "चामुंडराय के हाथ से घायल होकर शहाबुद्दीन पृथ्वी पर गिरा। क्योंकि हिन्दू सैनिक शहाबुद्दीन को भली प्रकार नहीं पहचानते थे इसलिए मौरिस्तान का पीर युद्ध-स्थल पर दिन भर घायल पड़ा रहा और किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। जब सूर्यास्त हो गया तो थोड़ी रात व्यतीत हो जाने पर शहाबुद्दीन के गुलाम रणांगण में अपने स्वामी को ढूँढते हुए उस स्थान से निकले जहाँ गौर नरेश घायल पड़ा था। उस समय शहाबुद्दीन को कुछ होश आ गया था। गुलामों की आवाज पहचान कर उसने उनको अपने पास बुलाया और अपनी दशा उनसे कही। पुरुषनिष्ठ गुलाम अपने स्वामी के बच जाने से बहुत प्रसन्न हुए और शहाबुद्दीन को अपने कंधों पर उठाकर भागे हुए मुसलमान सैनिकों की ओर चले। गुलाम कंधे बदलते हुए चले जा रहे थे और घायल शहाबुद्दीन उनके कंधों पर सवार था। इस यात्रा में समस्त रात बीत गई और प्रातः बादशाह अपने भागे हुए सैनिकों से जा मिला।"[२]

"दूसरे ही वर्ष एक लाख सात हजार तुर्की खिलजी और अफगानी सैनिकों की बड़ी

---

१ तारीखे-फरिश्ता पृ० २१० से २११ तक प्रथम जिल्द।

२. पेज मसलमान तारीखे-फरिश्ता पृष्ठ २११ प्रथम जिल्द।

सेना लेकर शहाबुद्दीन हिन्दुस्तान की ओर चला। पिथौरा तीन लाख राजपूतों की सेना लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। ५८८ हिजरी ११९२ ईस्वी में दोनों सेनाएँ सरस्वती नदी के किनारे तरायन के युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गई। शहाबुद्दीन का मुकाबला होते ही १५० राजपूत राजाओं ने वीरता का तिलक अपने मस्तक पर चढ़ाया और शत्रु के मुकाबले में साहस से कार्य करने और मुसलमानों को बरबाद करने की शपथ उठाई। इन हिन्दू राजाओं ने आपस में यह प्रतिज्ञा की कि जब तक शत्रु को पराजित नहीं कर देंगे तब तक तलवारें म्यान में नहीं डालेंगे। क्योंकि हिन्दू सेना एक बार विजय प्राप्त कर चुकी थी इसलिए उनके हौसले बढ़े हुए थे। उन्होंने एक सन्देश शहाबुद्दीन के पास भेजा जिसमें लिखा था कि हम हिन्दू राजाओं की अनगिनत सेना का समाचार तो तुम्हें ज्ञात ही होगा। जितनी सेना इस समय हमारे पास है वह ही शत्रु को बरबाद करने के लिए पर्याप्त है परन्तु इस पर भी नई सेनाएं प्रतिदिन आ रही हैं जिनके आगमन से युद्धक्षेत्र कांप रहा है। अतः यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे नहीं हैं तो न सही तो अपने ग़रीब सैनिकों पर, दया करो। हमने अपने इष्ट देवताओं के सम्मुख प्रतीज्ञा की है कि यदि तुम अपने विचारों पर खेद प्रकट करके वापिस और लौट जाओ तो हम तुम्हारे मार्ग में बाधा नहीं डालेंगे। हम तुम पर दया करके तुम्हें अपने देश वापिस चले जाने की सम्मति देते हैं। नहीं तो स्मरण रखो कि कल प्रातः तीन हजार हाथियों और असंख्य सेना के साथ हम युद्ध-क्षेत्र को प्रलय क्षेत्र बना देंगे और तुम्हें पराजित होकर अपमान सहित युद्ध भूमि से भागना पड़ेगा। शहाबुद्दीन ने हिन्दू राजाओं का पत्र पढ़कर उत्तर में उन्हें लिखा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका पत्र सहानुभूति और प्रेम से भरा हुआ है। मैं यह पत्र पढ़कर वापिस और लौट जाने को तैयार हो जाता परन्तु मुझे विवशता यह है कि मैं अपने भाई का दास हूँ और उसकी ही आज्ञा से मैंने यह आक्रमण किया है। इसलिए यदि मुझे आप इतना समय दान दें कि मैं किसी विश्वसनीय दूत को अपने भाई के पास भेजकर आपकी शक्ति और अपनी कमज़ोरी का पूरा विवरण उस तक पहुँचा सकूं तो मुझे विश्वास है कि इस बात पर हमारी सन्धि हो जाएगी कि सरहिन्द पंजाब और मुलतान पर गौरी का अधिकार रहे और शेष हिन्दुस्तानी नगर आपके अधिकार में छोड़ दिए जाएँगे। हिन्दू राजा शहाबुद्दीन के उत्तर को इस्लामी सेना की दुर्बलता समझकर और अपनी शक्ति की मस्ती व मादकता में डूबकर ग़ाफ़िल हो गये। जब शहाबुद्दीन ने समझ लिया कि हिन्दू राजा ग़ाफ़िल और मौज में व्यस्त हैं तो उसने रात ही रात में अपनी सेना युद्धार्थ तैयार कर ली और प्रातः ही जब राजपूत सैनिक शौच इत्यादि के लिए खेमों से बाहर निकले तो शहाबुद्दीन ने रणक्षेत्र में पहुँच कर सेना खड़ी कर दी।

हिन्दू राजा इस अचानक संकट से बहुत परेशान हुए, परन्तु जिस प्रकार भी उनसे सम्भव हुआ जल्दी-जल्दी तैयार होकर युद्धस्थल में आ डटे। शहाबुद्दीन को हिन्दुओं की वीरता ज्ञात थी। उसने अपनी सेना को चार भागों में बाँटा और सब को आज्ञा दी कि जब हिन्दुओं के हाथी और पैदल सेना मुसलमानों पर आक्रमण करें तो वे युद्ध से विमुख होकर भागने का प्रयत्न करें। इस युक्ति से जब हिन्दू सैनिक पीछा करते हुए अपनी सीमा

से बाहर आ जावें तो अचानक पलट कर हिन्दुओं पर जोरदार आक्रमण कर दें। शहाबुद्दीन की सेना ने उसकी आज्ञानुसार प्रातः से तीसरे पहर तक जमकर युद्ध किया अब सिर तोड़ प्रयत्न करने पर भी हिन्दुओं के पाँव युद्धस्थल से नहीं उखड़े और शहाबुद्दीन ने देखा कि दिन व्यर्थ जाता है तो उसने भगवान् पर भरोसा करके बारह हजार सैनिकों के साथ शत्रु पर आक्रमण किया। शहाबुद्दीन और उसके खरमेल इत्यादि अमीरों के लगातार आक्रमणों से शत्रु के पाँव रणांगण से उखड़ने लगे और हिन्दू सेना तितर बितर होने लगी। देखते ही देखते खाण्डेराव और अन्य राजपूत सरदारों की भेंट हो गए। पिथौरा अपनी शेष सेना लेकर भागा, परन्तु थोड़ी दूर ही जा पाया था कि सरस्वती नदी के किनारे शत्रु के हाथों पकड़ा गया। शहाबुद्दीन ने राजा पिथौरा को मार दिया।"[1]

उस समय के दूसरे लेखकों—जामुल हिकायत ताजुल्स मासिर, तबकाते नासरी प्रबन्ध चिन्तामणि, हमीर महाकाव्य और तबकाते अकबरी ने भी थोड़-बहुत परिवर्तन सहित इस युद्ध का यही वर्णन किया है। प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि—"पृथ्वीराज चौहान का सेनापति स्कन्द जिसने कि ११९१ ईस्वी के युद्ध में शहाबुद्दीन को पराजित किया था, कहीं और स्थान पर व्यस्त होने के कारण दूसरे अन्तिम युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सका था। पृथ्वीराज का एक और सेनापति उदयराज भी राजधानी में रहने के कारण युद्ध में सम्मिलित नहीं था। जब पृथ्वीराज सेनाएँ लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए सरस्वती तट की ओर बढ़ रहा था तो पिथौरा के मंत्री सोमेश्वर ने पृथ्वीराज को परामर्श दिया और प्रयत्न किया कि वह युद्ध करने न जाए। सोमेश्वर के इस परामर्श से पृथ्वीराज को सन्देह हुआ कि सोमेश्वर सम्भवतः मुसलमानों से मिल गया है। पृथ्वीराज ने क्रोध में आकर सोमेश्वर के कान कटवा देने की आज्ञा दी और कान कट जाने के पश्चात् उसे अपनी सेना से निकाल दिया। रणांगण में जब दोनों सेनाएं एक दूसरे के सम्मुख युद्ध की प्रतीक्षा में पड़ी हुई थीं तो पृथ्वीराज युद्ध की तैयारी की अपेक्षा राग रंग में डूबा रहा था।"[2]

इस प्रकार अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के पश्चात् कुरुक्षेत्र प्रदेश पर से हिन्दुओं का राज्य उठ गया और यह पुण्य प्रदेश मुसलमानों के अधीन हो गया। स्वभावतः मुसलमानों का न तो कुरुक्षेत्र में विश्वास था और न ही तीर्थ-स्थानों में उनकी किसी प्रकार की श्रद्धा अथवा आस्था थी। कुरुक्षेत्र के दुर्दिनों का श्रीगणेश हो गया और यह भूला हुआ उपेक्षित प्रदेश बन गया।

---

१ तारीखे-फरिश्ता पृष्ठ ११४ से ११७ तक, प्रथम जिल्द।
२. प्रबन्ध चिन्तामणि।

यवन और कुरुक्षेत्र

दास वंश के समय कुरुक्षेत्र

दास वंश के सम्राट अल्तमश के शासन-काल में ताजुद्दीन यलदोज ने थानेसर पर आक्रमण किया। ६१२ हिजरी में ताजुद्दीन यलदोज ने आक्रमण करके पंजाब और थानेसर पर अधिकार कर लिया। हिन्दुस्तान के इस सीमान्त प्रदेश पर अधिकार कर लेने के पश्चात् यलदोज ने अपने दूत सम्राट अल्तमश के पास भेजे। अल्तमश यलदोज के सन्देश से क्रोध में आ गया और शीघ्र सेना लेकर थानेसर की ओर बढ़ा। सरस्वती नदी के किनारे दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। भयंकर रक्तपात के पश्चात् यलदोज की पराजय हुई।[1] सम्राट अल्तमश की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्री रजिया सुलताना दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठी। परन्तु थानेसर में रजिया सुल्ताना का युद्ध उसके भाई बहराम शाह के साथ हुआ। ६१७ हिजरी १२११ ईस्वी में थानेसर के निकट बहराम शाह की सेना के सेनापति मजाजउद्दीन और रजिया सुलताना और अल्तोनिया की सेनाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में बहराम विजित हुआ। रजिया सुलताना रणाङ्गण से भाग निकली। भागती हुई रजिया और अल्तोनिया को जमींदारों ने पकड़कर मार दिया।"[2]

तुग़लक वंश और कुरुक्षेत्र

तुग़लक वंश के राज्य-काल में भी कुरुक्षेत्र प्रदेश ऐतिहासिक घटनाओं का केन्द्र रहा। "७८१ हिजरी में सम्राट फ़ीरोज़शाह तुग़लक समाने से लौटता हुआ अम्बाला और शाहबाद होकर थानेसर आया। वह कुछ दिन थानेसर ठहरा और उसके पश्चात् सहारनपुर चला गया।"[3] कहावत है कि विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। १३९८ ईस्वी में मध्य एशिया का खूँखार और भयानक सरदार तैमूर लंग दिल्ली पर आक्रमण करने जाते हुए कुरुक्षेत्र प्रदेश से गुजरा। वह थानेसर का समस्त गौरव और अभिमान धूल में मिला गया और वहाँ की बची-खुची संस्कृति भी नष्ट हो गई।

---

१ तारीखे-फ़रिश्ता पृ २१७ प्रथम भाग। २ तारीखे-फ़रिश्ता पृ. २६० प्रथम भाग। ३ तारीखे-फ़रिश्ता पृ. ६६ भाग दूसरा।

लोधी वंश में कुरुक्षेत्र

सुल्तान सिकन्दर लोधी के राज्य-काल में कुरुक्षेत्र ने कुछ समाशा ले लिया था। एक बार सूर्य-ग्रहण के पर्व पर सिकन्दर लोधी ने यात्रियों को लूटने और मारने की योजना बनाई थी।[1]

"एक बार उसने (सिकन्दर लोधी ने) कुरुक्षेत्र पर आक्रमण करना निश्चित किया। इस विषय पर आलिमों का मत ज्ञात करने के लिए उसने उन्हें एकत्र किया। उस युग के सबसे बड़े आलिम मियाँ अब्दुल्लाह अजोधनी भी उपस्थित थे। सभी ने उनकी ओर संकेत किया कि इनकी उपस्थिति में हम कुछ भी नहीं कह सकते। मियाँ निजाम (सिकन्दर लोधी) ने मियाँ अब्दुल्लाह से इस विषय में। पूछा उन्होंने पूछा वहाँ क्या होता है। सुल्तान ने कहा कि उस स्थान पर प्रत्येक प्रदेश से हिन्दू एकत्र होकर स्नान करते हैं। मियाँ अब्दुल्लाह ने पूछा कि यह प्रथा कब से चल रही है। सुल्तान ने कहा कि यह बड़ी प्राचीन प्रथा है। मियाँ अब्दुल्लाह ने पूछा कि आपके पूर्व मुसलमान बादशाहों ने इस सम्बन्ध में क्या किया। सुल्तान ने कहा कि इसके पूर्व किसी बादशाह ने कुछ भी नहीं किया। मुल्ला ने कहा कि इसका उत्तरदायित्व उन लोगों पर है। प्राचीन मन्दिर को नष्ट करना उचित नहीं। सुल्तान ने रुष्ट होकर कटार निकाल ली और कहा कि सर्व प्रथम मैं तुम्हारी हत्या करूँगा तदुपरान्त वहाँ आक्रमण करूँगा। मियाँ अब्दुल्लाह ने कहा कि सभी के लिए मरना अनिवार्य है। बिना ईश्वर के आदेश के कोई भी नहीं मरता। जब भी व्यक्ति किसी अत्याचारी के पास जाता है तो अपने लिए मृत्यु निश्चित करके जाता है। जो कुछ होना है वह होगा, किन्तु आपने मुझसे कुरान के विषय में प्रश्न किया तो मैंने उसका उत्तर दिया यदि आपको कुरान की चिन्ता नहीं है तो पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। सुल्तान ने अपने क्रोध को रोका और कहा कि यदि अनुमति प्रदान कर देते तो कई हजार हिन्दुओं को नरक पहुँचा देता और अधिकांश मुसलमान उससे लाभान्वित होते। मियाँ अब्दुल्लाह ने कहा कि मुझे जो कुछ कहना था मैंने कह दिया अब आप जानें। वह दरबार से उठ खड़ा हुआ। अन्य आलिम लोग उसके साथ चल दिये। सुल्तान ने किसी ओर ध्यान न दिया और कहा मियाँ अब्दुल्लाह आप कभी-कभी मुझसे भेंट करते रहें।"[2]

तबकाते अकबरी में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया गया है। "उसने (सिकन्दर लोधी ने) सुना कि थानेसर में एक कुण्ड है जहाँ हिन्दू एकत्र होकर स्नान करते हैं। उसने आलिमों से पूछा कि इसके विषय में शरा का क्या आदेश है। उन्होंने उत्तर दिया कि प्राचीन मंदिरों को नष्ट करने की अनुमति नहीं है जबकि उस कुण्ड में प्राचीन काल से स्नान करने की प्रथा चली आ रही है। उसमें स्नान का निषेध आपके लिए उचित नहीं। सुल्तान ने कटार निकाल ली और उस आलिम की हत्या का संकल्प करते हुए

१ इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया पंजाब भाग प्रथम।
तारीखे-दाऊदी लेखक अब्दुल्ला।
२. वाकेआते-मुश्ताकी लेखक शेख रिज्कुल्लाह मुश्ताकी।

कहा कि तू हिन्दुओं का पक्षपाती है। उस बुजुर्ग ने उत्तर दिया कि जो कुछ धर्म में लिखा है उसे मैं कहता हूँ और सत्य बात कहने में कोई भय नहीं। सुल्तान संतुष्ट हो गया।[1]

मुग़ल काल में कुरुक्षेत्र

प्रथम मुग़ल सम्राट बाबर के राज्य काल १५२६ ईस्वी में थानेसर के मवार राजपूतों ने अपने नायक मोहन के नेतृत्व में विद्रोह किया। पहले-पहले तो विद्रोह का इतना प्रचंड वेग था कि राजपूतों ने मुग़ल सेना को पछाड़ दिया। बाबर थानेसर के राजपूतों से बहुत परेशान रहा। १५३९ ईस्वी में जब शेरशाह सूरी और मुग़ल सम्राट हुमायूँ में संघर्ष आरम्भ हुआ तो थानेसर के राजपूतों ने एक बार फिर विद्रोह किया और दक्षिण में पानीपत तक नगर का प्रदेश चौपट कर दिया। शेरशाह सूरी के शासन काल में कुरुक्षेत्र प्रदेश में फिर सुख और शान्ति स्थापित हुए। शेरशाह द्वारा निर्मित बड़ी सड़क जो रोहतास से पेशावर तक बनवाई गई थी थानेसर नगर के बीचों बीच होकर गई थी। नगर की महत्ता को दृष्टि में रखकर उसने थानेसर में यात्रियों की सुविधा के लिए दो बड़ी सराए बनवाई थीं। एक सराय थानेसर नगर के दक्षिण में सन्निहित तीर्थ के पूर्वी किनारे पर और दूसरी उत्तर में बनवाई गई थी। थानेसर नगर के दक्षिण में बनवाई गई सराय का चिह्न तो बिल्कुल मिट गया केवल कुछ खण्डहर शेष हैं परन्तु उत्तर में बनवाई गई सराय खण्डहर के रूप में अभी शेष है जो दिन प्रति दिन गिरती जा रही है। यहाँ एक विशाल सराए है जिसके बीच एक मस्जिद और कुआं था जो १९४७ ईस्वी में देश-विभाजन के समय परिवर्तन में समाप्त हो गया। एक पुल जिसको शेरशाह ने सड़क पर बनवाया था अब भी थानेसर के उत्तर में खण्डहर बना खड़ा है। यह पुल इतना सुदृढ़ है कि उसकी मेहराबों पर बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हैं।

मुग़ल सम्राट हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् १८ नवम्बर १५५६ ईस्वी को अकबर ने जबकि वह देहली के राज्य के लिए हीमू बक्काल से युद्ध करने कलानौर से पानीपत की ओर बढ़ रहा था थानेसर में सेनाओं का पड़ाव डाला था। १५६७ ईस्वी में सूर्यग्रहण के महापर्व पर मुग़ल सम्राट अकबर कुरुक्षेत्र आया। "जब सम्राट थानेसर पहुँचा तो वहाँ जोगियों और सन्यासियों की एक जमात देखी। उनमें किसी विषय पर कुछ झगड़ा हो रहा था। वह सब के सब सम्राट के पास आए और प्रार्थना की कि उनका झगड़ा समाप्त किया जाए। सम्राट की आज्ञा से कुछ सैनिकों ने अपने शरीर पर भभूत रमा ली और संन्यासियों की सहायता के लिए उनमें शामिल हो गये क्योंकि उनकी जमात कमजोर थी। एक जबर दस्त लड़ाई शुरू हो गई और कई आदमी मारे गए। संन्यासियों की जीत हुई। सम्राट बहुत प्रसन्न हुए।"[2] सम्राट अकबर के राज्य-काल में थानेसर सरहिन्द महल का भाग था।

---

१ तबकाते अकबरी-लेखक निजामुद्दीन अहमद बख्शी।

२ तबकाते अकबरी, लेखक निजामुद्दीन अहमद बख्शी, [illegible] सिटी आफ इंडिया।

"थानेसर में एक ईंटों से बना किला है। धरती २२८१८८ बीघे १७ बिस्वे है। राज्य कर ७८१०८०२ है। किले में पचास घुड़सवार और १५०० सैनिक हैं। अधिक जनसंख्या रांगड़ों और गूजरों की है।"[1] आईने अकबरी में महाभारत युद्ध का भी विस्तारपूर्ण वर्णन है। अकबर ने महाभारत को फारसी में लिखवाया था। सम्राट अकबर ने हाजी सुलतान जिसने कि नकीब खान के साथ मिलकर महाभारत का अनुवाद किया था को थानेसर में भी हत्या करने पर कड़ी सजा दी।[2] सम्राट जहाँगीर के राज्य काल के दसवें वर्ष में थानेसर में भयंकर प्लेग फूट पड़ी। तुजके जहाँगीरी के अनुसार इससे पूर्व भारतवर्ष में कभी प्लेग नहीं पड़ी थी। यह प्लेग पश्चात् में दिल्ली और काश्मीर तक फैल गई। १५७३ ईस्वी में गुजरात के नवाब अकबर ने बड़ौदा के सूबेदार हुसन मिर्जा को युद्ध में हरा दिया। हुसन मिर्जा परास्त होकर पंजाब की ओर भागा। उसने समस्त कुरुक्षेत्र प्रदेश में उपद्रव मचाकर थानेसर को लूटा। सम्राट जहाँगीर के सिंहासन आरूढ़ होने के केवल पाँच मास पश्चात् मई १६०६ ईस्वी में उसके बड़े पुत्र शहजादे खुसरो ने अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसने देहली जाते हुए मार्ग में थानेसर को लूटा।

जनश्रुति है कि जहाँगीर और सम्राट शाहजहाँ दोनों सूर्य-ग्रहणों के अवसर पर कुरुक्षेत्र आये थे और उन्होंने तीर्थ-स्थानों की रक्षार्थ राजाज्ञाएँ भी जारी की थीं। शाहजहाँ ने थानेसर नगर के उत्तर-पश्चिमी कोने पर संगमरमर का एक मुग़ल-निर्माण कला के ढंग का मकबरा बनवाया। इसे शेख चेहली का मकबरा कहते हैं। शेख चेहली ईरान का एक फकीर था।

औरंगजेब ने कुरुक्षेत्र तीर्थ के मध्य का एक मन्दिर गिरवा कर वहाँ एक किला बनवाया था जहाँ से उसके सैनिक स्नान करने के प्रयत्न करने वाले यात्रियों पर गोली चलाते थे।"[3] कुरुक्षेत्र तीर्थ के बीच जहाँ औरंगजेब ने किला निर्मित किया था उस स्थान को आज भी मुगलपुरा कहते हैं। औरंगजेब के शासन-काल में सम्वत् १७१७ में जोधपुर नरेश राजा जसवंतसिंह ने अपनी नवविवाहित धर्मपत्नी सुरतानी के साथ कुरुक्षेत्र यात्रा की।

मुग़ल शासन-काल में कुरुक्षेत्र एक विस्तृत प्रदेश रहा। समय के ज्वार-भाटों ने इस प्रदेश का व्यापार समाप्त कर दिया। कला और सभ्यता के केन्द्र मिट गए, फिर भी धार्मिक स्थान होने के कारण कुरुक्षेत्र का महत्व बना रहा। अजीमुश्शान के पुत्र सम्राट फर्रुखसियर के शासन काल में चौथे वर्ष १७१७ ईस्वी में कुरुक्षेत्र प्रदेश सम्राट के निजी व्यय (सरफे खास) के लिए जागीर था। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में मुग़ल सम्राटों की शक्ति क्षीण हो रही थी और पंजाब में सिक्ख जोर पकड़ते जा रहे थे। १७१० ईस्वी में गुरु गोविन्द सिंह की आज्ञा से वीर बन्दा बैरागी ने थानेसर के मुग़ल फौजदार को मारकर नगर को लूट लिया और नागरिकों को मार दिया था। सम्राट फर्रुखसियर ने थानेसर पर फिर अधिकार कर लिया और थानेसर नगर का नाम इस्लामाबाद रख दिया। प्राचीन सरकारी

१ आईने अकबरी, पृष्ठ १ ? ।

२ मुन्तखबुत तवारीख, लेखक अब्दुल कादिर बदायूनी वाल्यूम २ पृष्ठ ४०२।

३ इम्पीरियल गजटीयर आफ इण्डिया पंजाब प्रथम भाग।

कागजात में तो इस्लामाबाद का नाम कुछ दिनों चला परन्तु जन साधारण में यह नाम प्रचलित नहीं हो सका। १७२१ ईस्वी मुहम्मदशाह के शासन काल में कुरुक्षेत्र प्रदेश दिलावर खाँ मीरबख़्शी को जागीर में दे दिया गया। इस विषय पर नादिर नाम के लेखक और एक फ्रांसीसी यात्री सर विलियम जोन्स ने पूरा प्रकाश डाला है।[१] कुरुक्षेत्र प्रदेश को जो पहले ही मृत प्राय हो रहा था एक और दारुण कष्ट का सामना करना पड़ा। सम्राट मुहम्मदशाह के राज्य काल में १४ जनवरी १७३८ ईस्वी को फारस का बादशाह नादिरशाह कुरुक्षेत्र प्रदेश को बरबाद करता हुआ करनाल की ओर गया।

अक्तूबर १७१५ ईस्वी में मराठा राज्य के सुप्रसिद्ध पेशवा बाजी राव की माता राधाबाई ने कुरुक्षेत्र यात्रा की।[२]

मुगल सम्राट शाह आलमगीर सानी ने २५ अक्तूबर १७५४ ई० में एक फ़रमान (राज्य-आज्ञा) द्वारा मराठा पेशवा श्री हिम्मत को गया और कुरुक्षेत्र के तीर्थ स्थानों पर यात्रार्थ आने वाले यात्रियों पर लगाया गया जज़िया (कर) इकट्ठा करने की आज्ञा दी। इससे पूर्व जज़िया कर मुसलमान अफसर इकट्ठा करते थे।[३]

१७५५ ईस्वी में दिल्ली के मुगल सम्राट शाह आलमगीर सानी ने कुतुबखान की जागीर छीन कर मराठों को दे दी।

इस पर कुतुबखान ने नाराज होकर दिल्ली सम्राट से मुकाबला करने का विचार किया। १७५५ ईस्वी में कुतुबखान ने सरहिन्द के प्रदेश में लूटमार आरम्भ कर दी। करनाल में बादशाही सेना को पराजित करके कुतुबखान ने ११ मार्च १७५५ में थानेसर नगर लूटा।[४] ११ अप्रैल १७५५ ईस्वी में मदना बेग ने कुतुबखान को रोपड़ के स्थान पर पराजित करके थानेसर तक के प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। मदना बेग ने दिल्ली सम्राट के वज़ीर को लिख भेजा कि 'इस प्रदेश के जमींदार गुस्ताख हैं और इनको अधिकार में करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। यदि आपकी इस ओर आने की इच्छा है तो अपने साथ बड़ी सेना और प्रचुर युद्ध-सामग्री लायो नहीं तो आपका यहाँ आना बेकार होगा। आप इस प्रदेश का प्रबन्ध मुझ पर छोड़ दें। वज़ीर ने अपनी सेना की निर्बलता और निर्धनता देखते हुए पंजाब जाना स्थगित कर दिया। इस प्रकार थानेसर का प्रदेश मदना बेग के अधिकार में आ गया। देहली सम्राट ने मदना बेग को ज़फ़र जंग बहादुर की उपाधि दी।"[५]

'मदना बेग खान और दुर्रानियों को धोखा देने के लिए शिकार का बहाना बनाकर शाहज़ादा अलीगौहर दिल्ली से सरहिन्द जाता हुआ ६ जनवरी १७५९ ईस्वी को थानेसर से गुज़रा।[६] थानेसर का प्रदेश १७६७ ईस्वी में मदना बेगखान के हाथों से निकल कर

१ नादिर नामा। सर विलियम जोन्स के संस्मरण।

२ न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज़ वाल्यूम १ पृष्ठ १६ जी० एस० सरदेसाई।

३ न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज़ वाल्यूम २, पृष्ठ ३३४ जी० एस० सरदेसाई।

४ तारीखे आलमगीर सानी

५ तारीखे मुज़फ्फरी पृष्ठ ६८ की ६६ व लेखक मुहम्मद अलीखान दनसारि अब्दाली का भारत देश पृ० ३९ की ६७ व तारीखे पंजाब लेखक कन्हैया लाल पृ० ८८ ८८।। वाक़ये शाह आलम सानी।

६ वाक़ये शाह आलम सानी, पृ० ११ इबरते नामा मआसिर पृ० ११४

दुर्रानियों के अधिकार में आ गया। दुर्रानियों ने अब्दुल समदखान को सरहिन्द का गवर्नर बना दिया।"[1] मराठा सरदार मल्हार राव होलकर की स्त्रियां ६ जनवरी १७५८ ईस्वी को जब कुरुक्षेत्र स्नान करने के लिए आई तो अब्दुल समद खान की सेना की एक टुकड़ी से मराठों की मुठभेड़ हो गई। मराठे वीरता से लड़े और उन्होंने अफगानों को मारकर उनके घोड़े छीन लिए।[2] मराठों का पंजाब पर वास्तविक आक्रमण अन्तिम फरवरी १७५८ ईस्वी को आरम्भ हुआ।

मराठे और कुरुक्षेत्र

तीन मार्च १७५८ ईस्वी को पंजाब विजय यात्रा पर जाते हुए मराठा सरदार रघुनाथ राव ने अपनी बड़ी सेना सहित कुरुक्षेत्र में पड़ाव डाला।[3] लाहौर से देहली वापिस लौटते हुए रघुनाथ राव ने फिर पांच जून १७५८ ईस्वी को सोमावती अमावस्या के पुण्य पर्व पर कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान किया।[4] "७५ लाख रुपए वार्षिक के बदले रघुनाथ राव ने अपने विजित पंजाब को रिस्की वापिस लौटते हुए अदना बेग के हवाले कर दिया। अदना बेग मराठों की ओर से पंजाब का गवर्नर नियुक्त हुआ। अप्रैल १७५८ ईस्वी से सितम्बर १७५८ ईस्वी तक अदना बेग खान रघुनाथ राव विजित प्रदेश सिन्ध नदी से जमना नदी तक का अधिनायक बन गया।"[5]

"१५ सितम्बर १७५८ ईस्वी में मराठों द्वारा नियुक्त पंजाब के गवर्नर अदना बेग खान की मृत्यु हो गई। पेशवा ने मराठा सरदार दाता जी सिंधिया को पंजाब का राज काज संभालने के लिए सेना सहित भेजा। अन्तिम मार्च १७५९ ईस्वी को मराठा सरदार दाताजी सिंधिया अपनी सेना सहित पंजाब की ओर जाता हुआ कुरुक्षेत्र आया।[6]

१७५९ ईस्वी में मराठों से तंग आकर नजीबुद्दौला रोहेले, हिन्दू राजा सवाई माधोसिंह महाराजा जयपुर और श्री विजयसिंह महाराजा मारवाड़ ने अहमदशाह अब्दाली के पास सन्देश भेजा कि वह हिन्दुस्तान आकर मराठों से उनकी रक्षा करे। अक्तूबर १७५९ ई० में अहमदशाह अब्दाली ने भारी अफगान सेना लेकर हिन्दुस्तान पर अपना

---

(१) तारीखे मुजफ्फरी। (२) मराठ्यां चा इतिहास लेखक श्री के. राजवाडे पृ० ८५ जिल्द २१। (३) कागजात सम्बन्ध राव करमसिंह में पृ० २६५ से २७० तक। (४) तारीखे आलमगीर सानी पृ० १६५ बी अवालाए अमृत पृ० १०११ तजकरे इम्पादुल मुल्क पृ० ३६५ ३६६, खम्साकमा पृ० ८४ ए तारीख मुजफ्फरी पृ० २७८ तारीखे भाऊ व जनको पृ० १६ तुम्पाये जहांगशी पृ० २७८ दिल्ली क्रोनिकल सरकार पृ० ७१ आगा दूसरा कासी राव पृ० १—२। (५) राजवाडे राव आलम सानी पृ० १५६। तारीख अब्दुरशेना लेखक सईयद गुलदीन खान पृ० २१ बी पानीपत अमरा संपादक गुलाम अली आजाद पृ० १ ११ हैदर मुताअखरीन लेखक सईयद गुलाम हुसैन पृ० ८७ जहांगीर अदना बेग खान पृ० ५६ ए किताब तारीखे पंजाब लेखक बूटासिंह राय पृ० ११३ मुहासरे सलातीने दुर्रानी लेखक अब्दुल करीम पृ० ११ तारीखे अली पृ० १८७ खजानतुल मुहावरीज लेखक अमन अजहर पृ० २६५ बी हैदर एम ब्यानीड पचास पंजाब लेखक गैरन आर्थर प्रथम पृ० २६६—२६६। (६) एस. जे. एन० सरकार पृ० ७७ मराठा इतिहास।

रणजीतसिंह ने सतलुज नदी पार करके थानेसर के किले पर अधिकार कर लिया। २५ अप्रैल, १८०९ ईस्वी की लाहौर सन्धि और ३ मई १८०९ ईस्वी की घोषणानुसार थानेसर फिर अंग्रेजों के पास आ गया।[1] १८२७ ईस्वी में फ्रेजर लिखता है कि 'कुछ वर्ष पीछे कि यह प्रदेश जंगली जन्तुओं से भरा पड़ा था।'[2] १८२७ ईस्वी में थानेसर के स्वतन्त्राधिकार छीन लिए गए और इसे एक जागीर बना दिया गया। १८५० ईस्वी में अन्तिम सिख सरदार फतहसिंह की रानी की मृत्यु के पश्चात् थानेसर प्रदेश पर पूर्णतया अंग्रेजों का अधिकार हो गया। १८५७ ईस्वी तक कुरुक्षेत्र प्रदेश सूबा देहली में सम्मिलित था। पंजाब से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

थानेसर के सिख सरदारों का मुखिया मित्रसिंह था। कैप्टन लारकिन ने १८५० ईस्वी में थानेसर की सेटलमेंट रिपोर्ट में लिखा है कि 'मित्रसिंह मजनाथे का रहने वाला नीमदा राजपूत था।'[3] परन्तु कैप्टन ऐबट ने लिखा है कि मित्रसिंह जाट सिख था। वह अपने भतीजों भंगासिंह और भागसिंह के साथ थानेसर आया था। भंगासिंह और भागसिंह तो थानेसर के आस-पास पात में रहे और मित्रसिंह सिखों के एक जत्थे के साथ मेरठ चला गया जहाँ कि वह युद्ध में मारा गया।[4] भंगासिंह और भागसिंह ने शाहबाद के सरदार करमसिंह निर्मले और लाडवे के सरदार की सहायता से एक बार पराजित होकर दूसरी बार रात्रि को प्रहार करके थानेसर पर अधिकार कर लिया। दोनों भाइयों ने थानेसर प्रदेश को आपस में बाँट लिया। भंगासिंह ने ३/५ और भागसिंह ने शेष २/५ भाग पर अधिकार कर लिया।[5]

पंजाब सिख इतिहास के लेखक कैप्टन कनिंघम ने भंगासिंह के विषय में लिखा है कि 'थानेसर का राजा'[6] जो १८०९ ईस्वी में अंग्रेजों के साथ मिल गया था सिख सरदारों में सबसे बड़ा आतंकी था। महाराजा रणजीतसिंह केवल भंगासिंह से डरता था। १८ ९ ईस्वी में अंग्रेजों ने बोला और छिमोई गाँव भंगासिंह को दे दिए।[7] जनश्रुति है कि भंगासिंह ने सवा लाख आम के वृक्ष थानेसर प्रदेश में लगवाए थे। इन आम के बागों के नाम आज भी कम्पनी बाग भंगासिंह का बाग और छोटी सरकार का बाग हैं। भंगासिंह की सेना में डोगर शामिल थे जिनके साथ वह दूर-दूर के प्रदेशों को लूटता था। भंगासिंह के एक लड़का फतहसिंह और एक लड़की करमकौर थी। एक और लड़का साहबसिंह रखेल से था। करमकौर का विवाह पटियाला के राजा करमसिंह के साथ हुआ था। भंगासिंह ने करमकौर के दहेज में ५. गाँव दिए थे। १८१५ ईस्वी में भंगासिंह की मृत्यु हो गई। उसकी पक्की समाधि आज भी सरस्वती तट पर जीर्णावस्था में खड़ी है। रखेल के पुत्र साहबसिंह को धाने गो गाँव आजीविका के लिए देकर शेष रियासत

---

(१) सिख इतिहास कैप्टन कनिंघम पृष्ठ १४१।
(२) रिपोर्ट आर्कि० डीस्ट्रिक्ट गजटीयर जिला करनाल।
(३) सेटलमेन्ट रिपोर्ट आफ थानेसर लेखक कैप्टन लारकिन १८५१ ई०।
( ) कैप्टन ऐबट " " " " १८५४ ई०
(५) डीस्ट्रिक्ट गजेटीयर जिला करनाल दूसरा संस्करण।

पर फतहसिंह का अधिकार हो गया। फतहसिंह की मृत्यु १८१९ ईस्वी में हो गई। फतहसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसकी माता भंगासिंह की रानी माई जियाँ ने १८३० ईस्वी तक राज्य किया। १८३० ईस्वी में माई जियाँ की मृत्यु के पश्चात् फतहसिंह की विधवा रानी रत्नकौर ने १८४४ ईस्वी तक राज्य किया। १८४४ ईस्वी में रत्नकौर भी मर गई तो फतहसिंह की एक और विधवा रानी चन्दकौर ने १८५० ईस्वी तक राज्य किया। १८५० ईस्वी में चन्दकौर की मृत्यु हो जाने पर थानेसर अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। १८५० ईस्वी में कैप्टन लारकिन ने थानेसर की रियासत का सैटलमेन्ट किया।

भंगासिंह का साम्झीदार भागसिंह १७९१ ईस्वी में चार पुत्र छोड़कर मर गया। उसके तीन पुत्र सन्तानहीन मर गए। रियासत का प्रबन्ध भागसिंह के कनिष्ठ भाई बाजसिंह के पुत्र जम्पतसिंह के हाथ में आया। जम्पतसिंह १८३२ ईस्वी में निस्सन्तान मर गया। कैप्टन मर्रे ने रियासत का सैटलमेन्ट करके अपनी राज्य में मिला लिया।[1]

इस प्रकार पूरे ३१ वर्षों तक थानेसर का राज्य प्रबन्ध स्त्रियों के हाथ में रहा। स्त्रियों के राज्य का परिणाम भयानक और चौपट न होकर और क्या हो सकता था? सन् १८५५ ई० में कैप्टिन ऐबट ने जो कुरुक्षेत्र प्रदेश में सैटलमेन्ट आफिसर थे उस समय का वर्णन इस प्रकार किया है "कुरुक्षेत्र में बिल्कुल अराजकता है। कोई व्यक्ति सुरक्षित नहीं है। थानेसर को निर्दयता से लूटा गया है। पशुओं को चराते समय शस्त्रधारी चरवाहे रखने पड़ते हैं। झगड़े, युद्ध मार-काट और रक्त बह जाना प्रतिदिन की साधारण सी बातें हैं। प्रायः गाँव वाले अपनी रक्षार्थ पड़ोसी गाँव को लूट लेते हैं।[2]

महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् थानेसर लाहौर राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र का केन्द्र बन गया था। १५ सितम्बर, १८४३ ईस्वी को सरदार अतरसिंह ने अपने भाई लहनासिंह और भड़के केहरसिंह सिन्धोवालिया की सहायता से महाराजा शेरसिंह वजीर ध्यानसिंह और महाराजा शेरसिंह के पुत्र प्रतापसिंह की हत्या कर दी। सरदार अतरसिंह ने अंग्रेजी प्रदेश थानेसर में शरण ली और थानेसर को लाहौर राज्य के विरुद्ध विद्रोह का अड्डा बना लिया। अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट की आज्ञा से सरदार अतरसिंह सिक्ख राज्य को समाप्त करने के लिए फिर लाहौर गया। सरदार अतरसिंह ने लाहौर पर अधिकार करने का प्रयत्न किया परन्तु अतरसिंह, भाई बीरसिंह और राजकुमार कश्मीरासिंह इस प्रयत्न में ७ मई, १८४४ ईस्वी को औरङ्गाबाद के स्थान पर मारे गए।[3]

१९५७ का स्वतन्त्रता सँग्राम और कुरुक्षेत्र

१८५७ ईस्वी के प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध में भी कुरुक्षेत्र प्रदेश अन्य प्रदेशों से पीछे नहीं रहा। जब मेरठ और देहली में स्वतन्त्रता युद्ध की ज्वालाएं उठीं तो उनकी चिनगारियाँ कुरुक्षेत्र प्रदेश में भी पहुँचीं। देहली अम्बाला जी० टी० रोड पर कुरुक्षेत्र का सैनिक दृष्टि कोण से बड़ा महत्त्व था। पंजाब में उन दिनों अम्बाला अंग्रेजों का सबसे बड़ा सैनिक केन्द्र था। अम्बाला में ही अंग्रेजी सेनाओं के कमाण्डर इन चीफ जनरल ऐनसन का हैड क्वार्टर

(१) डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जिला करनाल। पृष्ठ [illegible] (२) कैप्टन ऐबट की १८५५ [illegible] सैटलमेन्ट रिपोर्ट डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जिला करनाल। पृष्ठ [illegible] (३) [illegible] पृष्ठ [illegible] [illegible] पृष्ठ ५० ।

था। श्रीमंत नाना साहिब जो १८५७ ईस्वी के स्वतन्त्रता संग्राम के मुख्य नायक थे की पैनी दृष्टि थानेसर के सैनिक महत्त्व पर पड़ी। इलाहाबाद, कालपी झाँसी और दिल्ली से होते हुए श्रीमंत नाना साहिब अपने मुख्य परामर्शदाता अज़ीमुल्ला सहित तीर्थ यात्रा का बहाना करके १६ अप्रैल १८५७ ईस्वी को कुरुक्षेत्र पधारे। श्रीमत नाना साहिब की योजना थी कि जब दिल्ली में स्वतन्त्रता ध्वज लहराए तो अम्बाला से अंग्रेज़ी सेना दिल्ली के अंग्रेज़ों की सहायतार्थ न जा सके। कुरुक्षेत्र की पंचायत ब्राह्मणान् ने श्रीमंत नाना साहिब के सम्मुख स्वतन्त्रता का सन्देश हरियाणा प्रान्त के गाँव-गाँव में पहुँचाने का वचन दिया। तत्पश्चात् पानीपत होते हुए नाना साहिब वापिस बिठूर चले गए। पवित्र तीर्थ कुरुक्षेत्र का नाम क्रमश स्वतन्त्रता-युद्ध का संदेश बनकर हरियाणा प्रान्त के प्रत्येक घर में पहुँचा। १४ मई, १८५७ ईस्वी को दिल्ली पर अधिकार का समाचार दावाग्नि की भाँति फैलता हुआ कुरुक्षेत्र पहुँचा। थानेसर में उस समय अंग्रेज़ों की पाँचवी नेटिव सेना का पड़ाव था। इस सेना ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। देसी सैनिकों ने अंग्रेज़ अफसरों को मार कर नगर पर अधिकार कर लिया और दिल्ली-अम्बाला पथ को पीपली के स्थान पर बन्द कर दिया जिससे कि अम्बाला से अंग्रेज़ी सेना दिल्ली न जा सके। २० मई १८५७ ईस्वी तक कुरुक्षेत्र प्रदेश पर विप्लवकारियों का अधिकार रहा। परन्तु २१ मई, १८५७ ईस्वी को महाराजा पटियाला की सेनाएं अंग्रेज़ों की सहायतार्थ थानेसर पहुँच गईं। विद्रोह कुचल दिया गया। कुरुक्षेत्र प्रदेश पर अधिकार करके दिल्ली-अम्बाला पथ अंग्रेज़ों के लिए खोल दिया गया। हिसार के विद्रोहियों को थानेसर लाकर जेल में बन्द कर दिया गया था और उन पर कड़ा पहरा लगा दिया गया था। परन्तु उस समय यह अफवाह फैल गया कि कैथल के राजपूत ३१ मई १८५७ ईस्वी को आक्रमण करके विद्रोहियों को छुड़ा लेंगे। अत विद्रोहियों को चुपचाप अम्बाला जेल भेज दिया गया। ६ जून १८५८ ईस्वी को महाराजा पटियाला अपनी राजधानी की रक्षार्थ सेना सहित थानेसर से पटियाला चला गया। थानेसर पर फिर विद्रोहियों ने अधिकार कर लिया। परन्तु महाराजा पटियाला की सेनाओं ने फिर आकर थानेसर नगर को अपने अधिकार में ले लिया। थानेसर के चौहान राजपूतों ने अंग्रेज़ों की सहायता की। अंग्रेज़ों की रक्षार्थ एक घुड़सवारोही सेना बनाई और २५० चौकीदार मेगज़ीन की रक्षा के लिए दिए।

परन्तु कुरुक्षेत्र प्रदेश के लोगों का विश्वास अंग्रेज़ों पर से उठ गया और लोग उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जबकि अंग्रेज़ी साम्राज्य नष्ट होगा। आखिर एक दिन अंग्रेज़ी सेनाएँ महाराजा पटियाला की सेनाओं को कुरुक्षेत्र प्रदेश में छोड़कर देहली पर पुन अधिकार करने के लिए आगे बढ़ गईं। महाराजा पटियाला की फौजों ने थानसर की जनता पर नित्य नवीन जुल्म तोड़े। धीरे धीरे स्वतन्त्रता युद्ध की चिनगारियाँ ठण्डी पड़ गईं। फिर भी पंचायत ब्राह्मणान् के सदस्य गाँव-गाँव में स्वतन्त्रता की अलख जगाते फिरे। १८५७ ईस्वी के स्वतन्त्रता-युद्ध के समय थानेसर जिला था। यहाँ का डिप्टी कमीश्नर कैप्टिन मेकेनिस था।

(१) डीस्ट्रिक्ट गज़ेटियर जिला करनाल दूसरा संस्करण; हरियाणा म्यूज़ी लेखक चार्लस राजम; आर्कियालॉजिकल रिपोर्टस लेखक के सी विलसन; देश हरियाणा म्यूज़ी; चार भाग प्रसिडेन्सीज़ लेखक मीर सरकार; लोक रत्न की डायरी; पंजाब सरकार की म्यूज़ी पर रिपोर्ट्स।

ज़िला थानेसर

थानेसर का जिला १८४९ ईस्वी में अंग्रेजों द्वारा बनाया गया था जो १८६२ ईस्वी में तोड़ दिया गया। १८६२ ईस्वी में पीपली को थानेसर की तहसील और जिला अम्बाला बना दिया। सम्भवतः सन् १८६८ ईस्वी में तहसील थानेसर और जिला करनाल बना दिया गया जो आज दिन तक है। सन् १८५७ ईस्वी से पूर्व कुरुक्षेत्र सूबा देहली के राज्य प्रबन्ध में था परन्तु १८५७ ईस्वी के पश्चात् सूबा पंजाब के साथ मिला दिया गया। जिला थानेसर का प्रथम डिप्टी कमीश्नर कैप्टिन लारेन्स था। वे अंग्रेज आफिसर जिन्होंने थानेसर के जिला बनने से पूर्व थानेसर प्रदेश का राज्य प्रबन्ध किया था उनके नाम इस प्रकार हैं —

१८४३ ईस्वी	—	मेजर लारेंस सी० बी०
१८४५ ईस्वी	—	मेजर लीच सी० बी०
१८४६ ईस्वी	—	मेजर ए० एस० ऐबट
१८४८ ईस्वी	—	बी० कैम्पबल
१८४९ ईस्वी	—	मेजर एस० ए० ऐबट[1]

१८५० ईस्वी में थानेसर के सैटलमेन्ट के पश्चात् डिस्ट्रिक्ट गजटीयर करनाल के अनुसार थानेसर के विषय में लिखा है कि 'थानेसर नगर को पैनी दृष्टि से देखने वाले से यह बात छुपी हुई नहीं रह सकती कि इसकी दशा कुछ वर्ष पूर्व अच्छी थी। नगर और ग्रामों के खण्डहरों से स्पष्ट दीखता है कि जितने लोग इनमें अब बसते हैं कभी इनसे कहीं अधिक बसते थे। चारों ओर कुओं की बहुतायत थी जिनमें से आधे से अधिक अब अट गए हैं और उपजाऊ धरती उस समय की स्मृति दिलाती है जबकि यहाँ अधिक जनसंख्या और समृद्धि निवास करती थी। इस प्रदेश की समृद्धि का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जितना भूमिकर अब हमें कठिनता से मिलता है, उससे दो गुणा सिक्खों के राज्य में इकट्ठा होता था।[2] जब मैंने इस प्रदेश के इतिहास का अध्ययन किया तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि इस प्रदेश के उजड़ने के कुछ कारण ये हैं कि कैथल के राजा भाई उदयसिंह का प्रधान मंत्री तुलसीराम मझानी अल्पदृष्टि वाला क्रूर मनुष्य था। उसने भारी कर लगाकर यहाँ के लोगों को पीस दिया। करों से बचने के लिए बहुसंख्या में लोग कैथल से उठकर थानेसर में आ बसे क्योंकि थानेसर में कर बहुत ही कम थे। १८४३ ईस्वी में भाई उदयसिंह

---

(१) डिस्ट्रिक्ट गजटीयर जिला करनाल दूसरा संस्करण। (२) डिस्ट्रिक्ट गजटीयर जिला करनाल दूसरा संस्करण

की मृत्यु के पश्चात् कैथल भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। अंग्रेजों ने कैथल के करों में भारी कमी कर दी परिणाम स्वरूप जो लोग कैथल से आकर थानेसर में बसे थे वे तो वापिस चले ही गए परन्तु उनके साथ थानेसर के लोग भी भारी संख्या में कैथल चले गए। थानेसर में कई बार हैजा फूटा सन् १८५५, १८५७ और १८६१ ईसवी में तो इतना हैजा फैला कि नगर बिल्कुल उजाड़ हो गया। मौसम के परिवर्तन ने भी रौद्र रूप धारण किया सन् १८११ १८१२ और १८१८ ईसवी में तो इतने ओले पड़े कि सारा प्रदेश उजड़ गया और अचानक भुखमरी फैल गई। कुछ लड़ाकू झगड़ालू, बागी और चोरी करने वाली जातियों के आतंक से जनता यह प्रदेश छोड़-छोड़ कर चली गई।"[1]

"थानेसर में एक पुराना खण्डहर किला है जो चोटी पर १२०० फीट है। पूर्व में एक चोटी पर आधुनिक नगर बसा हुआ है और पश्चिम में एक पर्यन्त भूमि है जो बाहरी कहलाती है। तीनों छोटी पहाड़ियाँ लम्बाई में पूरब से पश्चिम तक करीब एक मील हैं और चौड़ाई में करीब २ ०० हजार फीट। लम्बाई चौड़ाई १४०० फीट का घेरा बनाती है या २½ मील से कम जो कि ह्यूनसांग के ३½ मील के बराबर है। किन्तु मुसलमानों के आक्रमण से पहले यह निश्चित है आधुनिक नगर का भाग होगा। इस स्थान को दृष्टि में रखने पर पुराना नगर प्रत्येक ओर एक वर्ग मील होगा जो कि चार मील का घेरा बनायेगा या चीनी यात्री ह्यूनसांग की माप से कुछ अधिक। यह कहा जाता है कि इसकी ५२ मीनारें थीं जिनमें अब भी कुछ अवशिष्ट हैं। यह किला राजा दिलीप ने बनवाया था जो कुरु का वंशज था और पांडु की पांच पीढ़ी पहले था। पश्चिम में मिट्टी के किले की दीवारें सड़क से ६० फीट ऊँची हैं। किन्तु भीतरी भाग ४० फीट से ऊँचा नहीं है। पूरी पहाड़ी टूटी हुई बड़ी बड़ी ईंटों से ढकी है। किन्तु तीन पुराने कुओं के अतिरिक्त प्राचीनता का कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं है। ह्यूनसांग के समय यात्रा का घेरा २०० ली था जो भारतीय योजन के अनुसार २० कोस के बराबर था। किन्तु अकबर के समय ये घेरा बढ़ कर ४० कोस हो गया। मिस्टर कार्लाइल ने यही माना है। टालेमी के द्वारा थानेसर को बतनकैसर के नाम से पुकारा गया है। बटन कैसर के लिए स्थानेसर या संस्कृत स्थाण्वीश्वर का प्रयोग होता है"।[2]

कुरुक्षेत्र ने मुगलों और सिक्खों के शासन काल में किसी भी दृष्टिकोण से उन्नति नहीं की। यह एक ऐतिहासिक कड़वा परन्तु सत्य है कि सतलुज नदी से परे पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह के सुप्रबन्ध के कारण सिक्ख राज्य पंजाब के लिए वरदान था। परन्तु कुरुक्षेत्र प्रदेश के लिए तो सिक्ख सरदारों का राज्य जीता जागता अभिशाप था। भंगसिंह और उसकी विधवा रानियों के कुप्रबन्ध और अयोग्यता ने कुरुक्षेत्र प्रदेश को चौपट करके रख दिया। थानेसर के सिक्ख सरदारों की धर्म कला, शिक्षा संस्कृति अथवा निर्माण कार्यों में न तो कोई रुचि थी और न ही उनकी कोई देन है। यह सिक्ख सरदार इतने निकम्मे थे कि तीर्थों का तो क्या ध्यान करते सिक्ख गुरु साहिबान तक के गुरुद्वारे तक न तो बनवा सके और न ही उनकी मरम्मत करवा सके। जिस प्रकार मुगलों और अंग्रेजों ने धार्मिक

---

(१) डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जिला करनाल दूसरा संस्करण। (२) मेरा करनाल लेखक गिरीशचन्द्र अवस्थी।

तीर्थों की रक्षार्थ राज्याज्ञायें निकालीं, सिक्ख सरदारों की कोई ऐसी आज्ञा नहीं है। थानेसर नगर और कुरुक्षेत्र प्रदेश भर पर उनके शासन-काल में कंगाली और भुखमरी रही। सिक्खों के शासन-काल में एक भी हवेली या घर नगर भर में ऐसा नहीं बना जिसे सुन्दर कहा जा सके। एक शब्द में, 'वह आए, कुरुक्षेत्र को लूटा और मृत्यु के ग्रास बन गए"। उनके दरबार में विद्वानों का स्थान नहीं था बल्कि मरासियों का बोलबाला था। इसकी अपेक्षा कि सिक्ख सरदार अपने लिए नवीन सुन्दर और कलात्मक ढंग के किले या महल उसी प्रकार बनवाते जिस प्रकार उनके पड़ोसी राजा कैथल नरेश भाई उदयसिंह ने कैथल और पहेवे में बनवाए, उन्होंने मुसलमानों की पुरानी खण्डहर तुल्य बड़ी हवेलियों पर अधिकार कर लिया और उन्हीं टूटी हुई हवेलियों में जीवन काट कर मर गए। वह बड़ी हवेली जिसे पुराना थाना कहते हैं और वह हवेली जिसमें भंगासिंह की रखैल का पुत्र साहबसिंह और उसका पुत्र किशन सिंह रहता था शब्द सुन्दर की परिभाषा में भी नहीं आती।

केवल नगर और उसके प्रदेश के गाँवों के पुराने मकान देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ भी उदयसिंह के राज्य में समृद्धि का राज्य था। परन्तु थानेसर और उसके प्रदेश के गाँव उजड़े-उजड़े हैं। दस वर्ष पहले थानेसर प्रदेश के गाँवों में एक भी मकान पक्का बना हुआ नहीं था। यहाँ तक कि थानेसर के सिक्ख सरदारों ने गाँवों के पक्के कुओं की ईंटें उखड़वा कर कुएं तोड़ दिए। उनमें इतनी सामर्थ्य या सूझ बूझ भी नहीं थी कि भट्टे में ईंटें पकवाकर अपने मकान बना लेते।

वास्तव में थानेसर के सिक्ख सरदार पेशेवर लुटेरे थे।

मिस्टर सारकिम और कुरुक्षेत्र

सम्राट प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन के पश्चात् सारकिम पहला व्यक्ति था जिसने पवित्र तीर्थों के जीर्णोद्धार के लिए विशेष कार्य किया। कुरुक्षेत्र भूमि में श्रद्धा रखने वाले समस्त लोगों को सारकिम साहिब का आभारी होना चाहिए। मिस्टर सारकिन १८५० ईस्वी में जब सिक्खों का राज्य समाप्त होकर अंग्रेजों का राज्यारम्भ हुआ थानेसर का पहला डिप्टी कमिश्नर और सैटलमेन्ट आफिसर था। जो महान् कार्य हिन्दू जनता धनी और राजा-महाराजा नहीं कर सके वह कार्य सारकिम साहिब ने किया। सारकिन साहिब कुरुक्षेत्र के जीर्णोद्धार का जन्मदाता था। सारकिम से पूर्व पुण्य तीर्थों के घाटों की शोचनीय दशा थी। बल्कि सत्य तो यह है कि तीर्थों के घाट नहीं के समान थे। सारकिन साहिब ने अवसर पाकर राजा महाराजाओं और धनवानों को कुरुक्षेत्र के नव निर्माणार्थ रुपया देने के लिए प्रोत्साहित किया और समस्त जिले से भूमिकर के साथ एक-एक रुपया विशेष कर से इकट्ठा किया और तीर्थों के घाट पक्के बनवाये। उन्हें घाट बनवाने का इतना चाव था कि स्वयं अपनी धर्मपत्नी के साथ प्रतिदिन कार्य देखने जाया करते थे। सारकिम साहिब ने कुरुक्षेत्र तीर्थ के पश्चिमी और उत्तरी घाट अपने धन से बनवाये जो आज भी सारकिम घाट कहलाते हैं। अन्य अंग्रेजों ने भी समय समय पर आवश्यकतानुसार आज्ञापत्र निकाल कर पवित्र तीर्थों की रक्षा की और इस

पावन भूमि का गौरव बढ़ाने के लिए विशेष ध्यान दिया। लारकिन साहिब का सहायक सैटलमेंट आफिसर चौधरी कांसेराए था। श्री कांसेराए सुलतानपुर ज़िला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) के चौधरी कुड़ामल रईस का पुत्र था। श्री कांसेराए ने १८५४ ईस्वी में कुरुक्षेत्र दर्पण नाम की पुस्तक लिखकर कोहनूर प्रेस लाहौर से छपवाई थी। कुरुक्षेत्र दर्पण का जिक्र डिस्ट्रिक्ट गज़टीयर ज़िला करनाल में भी आया है। "यदि कुरुक्षेत्र के विषय में विस्तार से जानना हो तो श्री कांसेराए एक्स्ट्रा ऐसीस्टैन्ट सैटलमेंट आफिसर थानेसर की कोहनूर प्रेस लाहौर से छपी पुस्तक कुरुक्षेत्र दर्पण में पढ़ो।"[1] इस पुस्तक में १८५४ ईस्वी के कुरुक्षेत्र और उसके प्राचीन धार्मिक इतिहास का वर्णन है।

यह पुस्तक श्री कांसेराए ने भादों संक्रांति कन्या सम्वत् १९१२ सितम्बर १८५५ ईस्वी को समाप्त की। श्री कांसेराए लिखते हैं— जब मैं थानेसर में सहायक सैटलमेन्ट आफिसर था तो कुरुक्षेत्र के विषय में कोई प्रमाणित लिखित पुस्तक नहीं थी। मैंने जोकि धूल के समान हूँ पण्डित हरदत्त जैचन्द निवासी, पुण्डरी निवासी पण्डित श्यामलाल और सरहद ग्राम के निवासी बाबा हरिगिर के चेले केवलदास के साथ तीर्थों का वास्तविक स्थान जानने के लिये पैन्ध कुरुक्षेत्र भूमि की यात्रा की। यात्रा के पश्चात् मैंने जोकि शास्त्रों से अनभिज्ञ हूँ ब्राह्मणों और लोगों से सुनकर यह पुस्तक जनता की जानकारी और सुविधा के लिये लिखी है। मैंने यह पुस्तक भादों संक्रांति कन्या सम्वत् १९१२ सितम्बर १८५५ ई० को समाप्त की। सैकड़ों वर्ष पूर्व काशी के एक दण्डी स्वामी रामचन्द्र ने कुरुक्षेत्र भूमि की यात्रा करने के पश्चात् छ: हज़ार श्लोकों की एक पुस्तक लिखी थी। स्वामीजी विद्वान थे उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो तीर्थ उनके स्वप्न में आकर अपना माहात्म्य नाम और स्थान बतायेगा वह उसी तीर्थ को अपनी पुस्तक में लिखेंगे और उसी में स्नान करेंगे। कहते हैं कि ऐसा ही हुआ। दण्डी स्वामी जी के पश्चात् गोस्वामी हरिगिर ने सम्वत् १९ ५ में कुरुक्षेत्र भूमि की यात्रा करके तीर्थों का चित्र बनाया। सम्वत् १८६१ में सरदार भंगासिंह की रानी माई जियो ने भी कुरुक्षेत्र भूमि की यात्रा की। जो तीर्थ गुप्त हो गए थे उनको फिर प्रकाश में लाया गया। परन्तु दुर्भाग्यवश इन लोगों की यात्रा की कोई लिखित पुस्तक नहीं मिलती। कुरुक्षेत्र तीर्थ के चारों ओर पक्के घाट थे परन्तु अब उत्तर में केवल १९ घाट और पश्चिमी किनारे पर पाँच घाट शेष हैं। दुःख की बात है कि हिन्दू और सिख राजाओं राजा रणजीत सिंह राजा पटियाले इत्यादि ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अब मिस्टर लारकिन डिप्टी कमिश्नर थानेसर घाटों के बनवाने में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने जुलाई १८५१ ईस्वी से रुपया भी इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया है। गवर्नर बनरस साहिब ने दो हज़ार रुपया दान दिया है। लारकिन साहिब ने अन्य राजा महाराजाओं और धनवानों को भी लिखा है। अब तक पन्द्रह हज़ार रुपया इकट्ठा हो चुका है। इस कार्य के लिए पण्डित केदारनाथ की प्रधानता में और अन्य लोगों को मिलाकर एक धर्मसभा भी बना दी गई है। यदि लारकिन साहिब कुछ समय यहाँ और रह गए तो इसमें सन्देह नहीं कि वे तीर्थों के समस्त घाटों को पक्का बनवा देंगे। उन्होंने कुरुक्षेत्र

१ डिस्ट्रिक्ट गज़टीयर ज़िला करनाल दूसरा संस्करण।

तीर्थ में जल पहुँचाने के लिए एक नाला भी खुदवाया है। मार्किन साहिब के सरिश्तेदार धर्मसिंह मली ने इस अवसर पर एक प्रशंसात्मक कविता फ़ारसी भाषा में लिखी है। जिसकी अन्तिम पंक्तियों से तिथि भी निकल आती है।

तारिख मक़ाम मा'द अज वेद।
१२२६
बाज मामदयश आबरफ़्ता ॥[1]
१२७२ हिजरी

कुरुक्षेत्र तीर्थ पर अब तक इन लोगों ने घाट बनवाए हैं। महाराज करमसिंह पटियाला वृन्दावन ब्राह्मण भूना, मोरि बाई अलवर, मोठी ब्राह्मण थानेसर लछमण ब्राह्मण थानेसर रानी प्रेम कुँवर नभी नाभरा मस्ती पुत्र लख्खो कहार थानेसर, महाराजा रणजीत सिंह, मिश्र तोता राम पुरुषयाल महाजन पटियाला, बिहारीलाल लखनऊ, सिमला घट्टा अमृतराम ब्राह्मण थानेसर, बाबा भरण नाम साहबसिंह कानूनगो थानेसर सिलसलाबु महाजन मिर्जापुर बसन्त सिंह सरदार बेदी गुरु थानेसर मनोहर दास पुर महाराजा पटियाला श्रीपरमानन्द ब्राह्मण थानेसर परमानन्द मिश्र थानेसर घाट मारकिन साहिब।[2]

१८६७ ईस्वी में थानेसर में म्युनिसिपल कमेटी बना दी गई पहले तो इसके सदस्य मनोनीत होते थे परन्तु अब निर्वाचित हैं थानेसर नगर की जन संख्या हर्षवर्धन के शासन काल में एक लाख के लगभग रही होगी। १८२० ईस्वी में अंग्रेजी राज हुआ तो बारह हजार थी। १९११ ईस्वी देहली दरबार के समय ८७११ रह गई। देश के विभाजन १९४७ ईस्वी में आठ हजार थी। १९५२ ईस्वी में बारह हजार। १९६० ईस्वी में ११ हजार। १९६१ ईस्वी की जनगणना के अनुसार साढ़े सोलह हजार हो गई। और १९६३ ई० में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कारण बीस हजार जनसंख्या है।

सिक्ख गुरु और कुरुक्षेत्र

दस में से केवल सात सिक्ख गुरुओं के कुरुक्षेत्र आने का प्रमाण मिलता है। प्रथम गुरु बाबा नानक देव जी सूर्य-ग्रहण पर्व पर कुरुक्षेत्र पधारे थे। वह कुरुक्षेत्र तीर्थ के दक्षिणी तट पर ठहरे थे। बाबा नानक ने कुरुक्षेत्र के एक विद्वान ब्राह्मण पण्डित भानुराम जी से ब्रह्म ज्ञान और वेदान्त पर विचार विमर्श किया था। जिस स्थान पर बाबा नानक ठहरे थे वहाँ एक विशाल वट वृक्ष था जो अभी कुछ वर्ष हुए गिर गया है। उनकी स्मृति में उस स्थान पर एक गुरुद्वारा निर्मित है जिसे जनसाधारण भाषा में गुरुद्वारा सिद्ध वटी कहते हैं। बाबा नानक कुरुक्षेत्र से पहेवा और कराह होते हुए करनाल की ओर गए थे। सम्वत् १६११ सम्राट अकबर के शासन-काल में तीसरे गुरु अमरदासजी कुरुक्षेत्र आए थे। सम्राट जहाँगीर के राज्य-काल में छठे गुरु हरगोविन्द जी कराह के मार्ग से कुरुक्षेत्र आए थे। जिस टीले पर उन्होंने विश्राम किया था वहाँ थानेसर नगर और सन्निहित तीर्थ के बीच गुरुद्वारा बना

(१) कुरुक्षेत्र दर्पण लेखक श्री कालेराम पृ० २६। (२) कुरुक्षेत्र दर्पण लेखक श्री कालेराम पृ० २६।

हुआ है जो सन् १६४७ ईस्वी से पूर्व जीर्णावस्था में था परन्तु अब उसका नव निर्माण हो रहा है। सातवें गुरु हरराय जी पहेवे के मार्ग से कुरुक्षेत्र पधारे थे। उनकी स्मृति में सिक्खिया वाली हवेली में गुरुद्वारा बना हुआ था। मार्च १७६४ ईसवी विक्रमी १७२१ में आठवें गुरु हरिकृष्ण जी पं० लालचन्द के साथ पंजोखरे से देहली जाते हुए पधारे। नवें गुरु तेगबहादुर जी बारने के मार्ग से होकर सूर्यग्रहण के पर्व पर कुरुक्षेत्र आए थे। वह थानेसर नगर के उत्तर में स्थाणेश्वर तीर्थ के तट पर ठहरे थे। उनकी स्मृति में वहाँ गुरुद्वारा निर्मित है। सम्वत् १७५१ में सम्राट औरंगजेब के शासन-काल में दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी ने कुरुक्षेत्र में पदार्पण किया था। वे कुस्थान तीर्थ के उत्तर-पश्चिमी तट पर ठहरे थे। उनके आगमन की स्मृति में वहाँ गुरुद्वारा बना हुआ है। योगी रामनाथ गुरु गोविन्दसिंह जी से कुरुक्षेत्र में मिला था। गुरु गोविन्दसिंह जी एक विद्वान ब्राह्मण पण्डित मनीराम जी से मिलने उसके घर मुहल्ला चौधरान में गए थे और पंडितजी को एक फरमान ताम्रपत्र पर लिखकर दिया था जो आज भी पंडित मनीरामजी के वंशजों के पास सुरक्षित है। पंडित मनीराम जी के घर में भी गुरु गोविन्दसिंह जी की स्मृति में गुरुद्वारा निर्मित है।

सरस्वती नदी के पावन तट पर निर्मले साधुओं के तीन आश्रम थे जिनमें विद्वान साधु निवास करते थे। एक आश्रम प्राचीकुल तीर्थ पर संत भाई गुलाबसिंह जी का था। भाई गुलाबसिंहजी सोलह वर्ष की आयु में विद्याध्ययनार्थ काशी गए थे और पूर्ण विद्वान होकर लौटे थे। उनके गुरु का नाम मानसिंह था जो निर्मला संप्रदाय के थे। भाई गुलाब सिंह जी को रियासत नाभा के महाराज की ओर से बन्धान मिलता था। सरस्वती तट के प्राचीकुल तीर्थ पर बैठकर भाई गुलाबसिंह जी ने अनेक ग्रंथ लिखे। उनकी प्रथम रचना 'भावरसामृत' है जिसका लेखन समय विक्रमी सम्वत् १८३४ है। दूसरी रचना 'मोक्षपंथ' का लेखन समय सम्वत् १८३५ है। तीसरा ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' है इसकी रचना संस्कृत के आधार पर हुई है। चौथी कृति 'कर्म विपाक' है। भाई गुलाबसिंह जी की अन्तिम रचना 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' है जो सम्वत् १८४६ में लिखा गया था। यह भी संस्कृत नाटक का भाव रूपान्तर है।

रस बेद औ वसु चन्द्र समत माघ भरित जाम,
नभ मास भ्रिग पुन वासरे दसमी नदी पहिचान।
गुरु मानसिंह पदारविंद प्रनम्यना उरुठाम,
कुरुक्षेत्र प्राचीकूल तट यहि कीन ग्रंथ बखान।।

भाई गुलाबसिंह जी ने एक और ग्रंथ 'राम नाम प्रताप प्रकाश' भी लिखा है। इस ग्रंथ में श्री राम के गुणों का वर्णन है। गद्य का नमूना इस प्रकार है "श्रीराम नाम में जो कुतर्क करते हैं सो नरक जावेंगे। श्री राम नाम अमृत को धाम है। जौन पुरुष निंदा करते हैं सो महा पापी हैं। सोई राक्षस हैं महा नीच हैं।" भाई गुलाबसिंह जी की रचना के नमूने के लिए दो पद प्रस्तुत करता हूँ जिनमें से प्रथम संस्कृत पद्य के भावानुवाद रूप में और दूसरा अध्यात्म रामायण' में से मौलिक रूप में है।

मूल संस्कृत पद्य —

> प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्र सम्भवस्तावत् ।
> निपतन्ति दृष्टि विशिखा यावन्मे दीव राक्षीणाम् ॥

भाव रूपान्तर —

> तब लौ मन माहिं विवेक रहै सुभ भागम ते उपजित इह जोई ।
> जब लौं नहिं नील सरोरुह में, द्रिग नारि कटाक्ष लगे सर कोई ।
> जिय जीवत जे नव खड मही, घर नारि भजै कर ओर सु दोई ।
> चतुरानन सौं जग माँहि पिखे द्रिग नारि प्रवीश नहीं भट कोई ।

दूसरा नमूना —

> दूर रहो रघुवीर खर मम नावहिं नाहिं सु पाद छुहावो ।
> आपने चरण को नाव लगाई, सु दीन दयाल न काज गवावो ।
> राजकुमार पखार लयो पद, तो मम नावन की ढिग आवौं ।
> पाहन नाग पखान उडे, मम नाव उडे कहते तुम पावो ।
> इह भाँति उचार पखार दोउ पद नाव चढाई के पार उतारे ।
> रघुनाथ महामुन भ्रात सभे मिथिला पुर की पुनि ओर सिधारे ।
> पुर की ढिग आइ खरे अब ही मिथिले सहि दूतन वाक उचारे ।
> आवत हैं रिखराज मुनी जुग बालक साथ हैं राज कुमारे ।

भाई गुलाबसिंह जी ब्रजभाषा और संस्कृत के पूर्ण विद्वान थे । भाषा और छन्दों पर इनका पूरी प्रकार अधिकार था । इन्होंने गुरु नानक देव गुरु गोविन्दसिंह तथा राम और कृष्ण सभी की स्तुति की है ।[1]

भाई संतोषसिंह जी ने सरस्वती तट पर बैठकर सम्वत् १८७८ में नाम कोष जो अमर कोष का भाषा अनुवाद है, सम्वत् १८८० में 'गुरु नानक प्रकाश' सम्वत् १८८१ में जपुजी गर्व गंजनी टीका "रामायण" को सम्वत् १८८८ में प्रारम्भ करके सम्वत् १८९० में पूर्ण की । श्री गुरु प्रताप सूर्य" इसमें दसों गुरुओं का इतिहास जीवन और गुणादि का वर्णन है । इसकी रचना का प्रारम्भ सम्वत् १८९२ में हुआ और सम्वत् १९०० में समाप्त हुई । भाई संतोष सिंह जी ने भी काशी में शिक्षा पाई थी । इनकी रचनाओं में संस्कृत ब्रज फारसी और पंजाबी भाषाओं के बहुत शब्द आते हैं । भाषानुवाद में ये कितने प्रवीण थे इसका उदाहरण देखिए । भर्तृहरि के नीति शतक के श्लोक का भाषा अनुवाद देखिए ।

मूल श्लोक —

> लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
> पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
> कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेन्-
> न तु प्रति निविष्ट मूर्खजन चित्तमाराधयेत् ॥

---

(१) पंजाब का हिन्दी साहित्य लेखक चन्द्रकान्त गुप्त पृ ७१ से ७३ तक ।

भाषा अनुवाद —

सिकता महँ ते जतन कर तेल जु निकसावै।
कमठ पीठ पर भ्रान्त किहु बहु बाल जमावै।।
सिर पर राखन ससे के उगवाय विखाना।
तौ दुष्टनि के हृदय में गुन करहु महाना।[1]

१८४१ ईस्वी में जब महाराज कैथल भाई उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने कैथल को हस्तगत कर लिया और चारों ओर आतंक फैल गया तो इसका वर्णन भाई संतोषसिंह ने इस प्रकार किया है।

परी लूट कथल बिखे मिले चोर बटमार।
आप आपको भजि चले तजि पुर सब दरबार।।

रामायण से काव्य का नमूना देखिए —

वाणी चाक सुवर्ण में विपाद वरण समचन्द।
मीन मंड मंडित करा बन्दौ पद अरविन्द।।
पूजा अरविन्द की दीनिन्द की धरिन्द की।
परि दम के इन्द की सुकथा रामचन्द की।।
पुनि ग्रीष्म ऋतु कीनो जोरा।
तप्त भई अतिशय अहँ ओरा।।
तपहि हृदय जिमि मत्सर धारी।
त्यों तप गई भूमिका सारी।
सूखे जल कर्दम विहरानी।
जस प्रेमी उर सखी सिखानी।।
सहत धूरि बहु भ्रमत अधूरे।
ज्यों मति भ्रमत बिना गुरु पूरे।।[2]

सन्निहित तीर्थ के पश्चिमी तट पर सम्वत् १८६१ में महात्मा शिवगिर जी ने श्री लक्ष्मीनारायण का एक सुन्दर मन्दिर बनवाया जो दक्षिण निर्माण कला का अति सुन्दर नमूना है। सम्वत् १९११ में महाराजा फरीदकोट वजीरसिंह ने कुरुक्षेत्र भूमि का भ्रमण करके सरस्वती तट पर अपने प्राण त्यागे जहाँ उनकी सुन्दर समाधि और फरीदकोट हाउस बना हुआ है। अंग्रेजी राज्यकाल में सन् १८१२ ईस्वी से यह प्रथा रही कि जब प्रथम बार गवर्नर जनरल कुरुक्षेत्र पधारे तो पंचायत ब्राह्मणान् को पाँच सौ रुपये और गवर्नर आए तो ढाई सौ रुपये भेंट देते थे। महाराजा रीवाँ विकट रमनसिंह ने कुरुक्षेत्र नव निर्माणार्थ एक लाख दस हजार रुपये दान किए थे। मई १९२४ ईस्वी में केन्द्रीय सरकार के रेलवे विभाग द्वारा कुरुक्षेत्र आने वालों पर एक आना सर चार्ज टैक्स लगाया था जिससे

(१) गुरु प्रताप सूर्य। (२) पंजाब का हिन्दी साहित्य पृ० ७४ से उद्धृत।

कि इस प्रकार इकट्ठा होने वाले रुपये से पवित्र तीर्थों की मरम्मत हो सके। इस रुपये के व्यय करने के लिए एक सलाहकार कमेटी बनी हुई है जिसके सदस्य सरकार मनोनीत करती है।

कुरुक्षेत्र की सैंकड़ों वर्ष प्राचीन पंचायत ब्राह्मणाम् ही एकमात्र वह संस्था है जो कुरुक्षेत्र की रक्षार्थ प्रयत्न करती रही है। तीर्थों की चल और अचल सम्पत्ति की रक्षा करना यात्रियों और सैलानियों की सहायता करना तथा जनता के चारित्रिक सांस्कृतिक और सामाजिक निर्माण कार्यों में योग देना पंचायत ब्राह्मणाम् के मुख्य उद्देश्य हैं।

राग-रंग में डूबा हुआ कुरुक्षेत्र

अंग्रेजों का राज्य हो जाने पर थानेसर में शांति स्थापित हुई और कुछ समृद्धि आई। सन् १८६२ ईस्वी से १९२० ईस्वी तक थानेसर में राग-रंग का साम्राज्य था। इसमें सन्देह नहीं कि १८९९ ईस्वी और १९०० ईस्वी में कुरुक्षेत्र प्रदेश में भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था परन्तु दुर्भिक्ष के पश्चात् भी स्वांग तमाशे चलते ही रहे। उस समय नगर के किसी भी भाग में चले जाइये राग रंग की महफ़िल जमी हुई है। उत्तर में स्थाण्वीश्वर महादेव के मन्दिर और कुबेर तीर्थ पर, दक्षिण में कुरुक्षेत्र तीर्थ के नारदिया घाट पर, सन्निहित तीर्थ के उत्तर पूर्वी कोण कुण्डी पर नगर में गौशाला के पास और पुरानी मण्डी में महादेव के मन्दिर के निकट कवित्त ख्याल जम्मोले संगीत नृत्य और स्वांग की महफ़िलें जमती थीं। नगर के ब्राह्मण और वैश्य सम्पन्न थे। कहते हैं कि भारामल जमी ने अपनी वाशिष्ठ तीर्थ पर समधाम के लिए अशरफ़ियाँ बिछाकर धरती मोल ली थी। वहाँ अब भी भारामल जमी का समाधि मन्दिर बना हुआ है। उस समय के कवि गोपीश्वर बालकराम ने स्वांग प्रणाली पद्य में पूरण भक्त रामायण राजा गोपीचन्द्र गोसाई और कुछ बड़ी पुस्तकें लिखीं— जिनमें से पूरण भक्त और गोपीचन्द्र दो प्रकाशित हुई और आज भी उन्हें जन साधारण बड़े चाव से पढ़ते हैं। कवि कृष्ण गोस्वामी ने पद्य में स्वांग दिलबर, गुलाब विष्णो कामोदमधुकलश और गुलबकावली लिखे जो अप्रकाशित हैं। मिश्र गोवरधन सारस्वत ने पद्य में स्वांग महाभारत कृष्णलीला जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह माधोनलकामकंदला और पुत्ता लिखे जो अप्रकाशित हैं। कवि पंडित शंकरलाल शुक्ल ने पद्य में स्वांग पद्मनी भूप बाहल राजा मोरध्वज भक्त मल्हार और भक्त भास लिखे जो अप्रकाशित हैं। कवि समाई नाथ ने पद्य में स्वांग महाराणा प्रताप पृथ्वीराज चौहान राणा रतनसिंह और सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र लिखे जो अप्रकाशित हैं। ज्योतिषी पंडित तुलसीराम जी ने पद्य में स्वांग राजा हरिश्चन्द्र लिखा जो अप्रकाशित है। श्री बाबा रामकरण सन्यासी स्वांग प्रणाली की कविता के सम्राट थे। परन्तु मेरी दृष्टि में कविता और मिठास की कसौटी पर उस समय का कवि सम्राट एक मुसलमान अहमद बख्श जो आदि से अन्त तक पूरा उतरता है। कवि अहमद की कविता भाव और भक्तिपूर्ण थी। कवि अहमद ने पद्य में स्वांग रामायण, नवमल कथा गुगा चौहान सोरठ पदमनी चन्द्रकिरण, नवसरे और कंस लीला

लिखे। एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। रामायण लिखते-लिखते साठ वर्ष की आयु में कवि महमद की मृत्यु हो गई थी। मुसलमान होते हुए भी हिन्दू धर्म शास्त्रों और देवताओं में महमद की श्रद्धा और उसका हिन्दी भाषा और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान अपूर्व और गर्व की वस्तु है।

रामायण में महमद की कविता का नमूना देखिए। रामायण के प्रारम्भ में महमद स्तुति करता है—

"नमो गणेश नमो शारदा नमो हंस वाहनी देव
नमो रामचन्द्र जी नमो सिया नमो शक्ति नमो शेव,
नमो लक्ष्मण वीर हनुमत के व्रत को,
नमो भरत नमो शत्रुघन जी नमो माई कौशल्या पतको
नमो शेष भुजंग नमो पुरजन नमो महेश्वर, नमो सूर्य रथ को,
नमो वाल्मीक नमो तुलसी दास नमो सर्व कविजन की मत को,
फेरि उनको मादानी, नमो मादर गुरु ज्ञानी,
नमन सबन को करत रामलीला मन ठानी।।

दूसरी स्तुति इस प्रकार है—

एकदन्त दयावन्त गुरु गौरी पुत्र गणेश,
तुम्हें रटत मुनीजन गुणी सकल सत नामादेश,
गुरु तुम बिन कोई कारण नहीं बनता,
सत नामादेश मात शारद विन कृपा ज्ञान घट में रापता,
सत नामादेश तप सूरज जो पूरब पश्चिम तक तपता
सत नामादेश दासतुलसी मुख बरनी रामायण जपता,
सीता कथ गाता करो मिल देव सहाता
माधवसिंह का शिष्य मोमन महमद प्रभु चाहता।।

श्री रामचन्द्र के जन्म को कवि महमद ने यूँ वर्णित किया है—

राजा इक्ष्वाकु के वंश में दशरथ के घर घोष,
श्री रामचन्द्रजी प्रगट भए शस्त्र धर्म का खोज,
प्रगट असुरों का विघ्न विदारन को
पृथ्वी का भार उतारन को भक्तों का कष्ट निवारन को,
सतयुग के वचन सुधारन को कौशल्या लाड़ लड़ारन को,
दशरथ घर आए गगन में शब्द सुनाए
चढ़ देव विमान आन हरि दर्शन पाए।।

कवि महमद बख्स श्री रामचन्द्र की जन्म कुण्डली में ज्योतिष का ज्ञान इस प्रकार दिखाता है—

राजन् श्री रामचन्द्र के जन्म का हमसे सुनों बखान,
चन्द्र, बृहस्पति, करक के पड़े लगन अस्थान,
तृतीय घर राहू कन्या का आया,
फिर चौथे शनि तुला का है सब सुख दायक कारज छाया,
फिर पंचम मंगल मकर का है घर सप्तम में फेरा पाया
है शुक्र मीन के सहित केतू सूर्य मष का बतलाया,
बुध का शुभ प्यारे ग्रह उच्च के कहे सारे
रामचन्द्र से खास सुफल हैं जन्म तुम्हारे ॥

कवि महमद को भाव प्रकट करने पर बड़ा अधिकार था। उनका रचित इतिहास सांग जयमल फत्ता वीररस प्रधान है। सांग जयमल फत्ता के आरम्भ में कवि महमद स्तुति करता है—

मेरि टेक दीन की राखियो सत पत गत के सग,
अष्ट देव गणपति प्रथम कहूँ रजपूती जग,
जिन्हों के शीश धड़ों का है झगड़ा,
मुठ भेड़ा धुर राठौरों का चौगरदे अकबर के दल का,
चित्तौड़ टूट विध्वंस हुई कहूँ कारण मुगलों के खलका
इक प्रथम पादशाह का किस्सा उस नगर जोधपुर के थल का,
बिगड़ेगा खेड़ा गंग कुल हो उलझेड़ा,
राणा जयमल साथ मालदे उठा बखेड़ा ॥

सांग जयमल फत्ता में भगवान की दूसरी स्तुति कवि महमद इस प्रकार करता है—

उस गुल आत्मा को मेरा पहले हो प्रणाम,
रूम रूम में बस रहा नजरों में असहाम,
मेरा आदाब हो उस अविनाशी को
द्वितीय प्रणाम श्री रामचन्द्र और नील कण्ठ कैलाशी को,
रघुनन्दन स्वामि को वन्दन घनश्याम पथ वृन्दावासी को,
तुम हो पूर्ण ब्रह्म पार करो महमद चरणन के दासों को
निर्भय ओंकारे सदा हम दास तुम्हारे
रजपूतों का सांग सभा में खेलें सारे ॥

उस समय थानेसर नगर में सांग करने वालों के दो अखाड़े थे। एक अखाड़े का नाम मादर का अखाड़ा था। मादर सिह जाति से बढ़ई था। उसके अखाड़े का सांग पुरानी अनाज मण्डी में जमता था। अनाज मण्डी जो आजकल सब्जी मण्डी कहलाती है में मन्दिर महादेव और एक कुआँ इसी अखाड़े का बनवाया हुआ है। कवि महुमद बख्श मादर के अखाड़े का ही खिलाड़ी था। मादर के अखाड़े का विशेष गुण कविता थी। दूसरे अखाड़े का नाम मानक का अखाड़ा था। मानक चन्द जाति का वैश्य था जो हाणी वाले भी कहलाते थे। मानक के अखाड़े के सांग गोशाला के निकट होते थे। मानक के अखाड़े के विशेष गुण संगीत, स्वर, ताल और साज थे। दोनों अखाड़ों में काटछाट की होड़ चलती थी। दोनों अखाड़ों के सांग एक ही समय में होते थे। होली के दिनों में थानेसर का राग रंग, मस्ती और मादकता पराकाष्ठा पर होती थी। सूर्यास्त हुआ अंधकार ने अपनी काली चादर संसार पर फैलानी आरम्भ की, इक्के-दुक्के तारे नीले आकाश पर निकले कि वातावरण नाचने वालों के घुंघरुओं की रुन झुन और धमाधम से मुखरित हो उठा। अर्ध रात्रि तक नाचने वाले गाते और नाचते समस्त नगर की गलियों और बाजारों में महफिलें जमाते और रसिक श्रोताओं को प्रसन्न करते घूमते रहते। अर्ध रात्रि तक नगर पर नाचने वालों का अधिकार रहता था। प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में मानक और मादर के अखाड़े सांग दिखलाने लग जाते। प्रायः यह सांग दोपहर तक चलते परन्तु कभी-कभी सायंकाल तक भी सांग होते रहते थे। समस्त नगर सिमट कर मानक और मादर के अखाड़े में इकट्ठा हो जाता था। दोनों अखाड़े के खिलाड़ियों में नोक-झोंक भी चलती रहती थी। अखाड़ों के साथ-साथ नागरिक भी दो दलों में बँट जाते थे। स्वांगों का श्री गणेश होने से पूर्व दोनों अखाड़ों के खिलाड़ी साजिन्दों सहित सरस्वती नदी-तट पर बने धारदा के मन्दिर में जाते फिर खिलाड़ी सांग की वेशभूषा पहने बाजे बजाते सुसज्जित रथों पर सवार होकर स्थाणेश्वर महादेव की आराधना के लिए जाते थे। पवित्र तीर्थों पर संगीत की महफिलें प्रायः आधु मास तक जमती थीं। स्थाणेश्वर महादेव के मन्दिर पर श्री महन्त मंगल गिरि और सन्निहित तीर्थ पर भी बाबा रामशरण संन्यासी श्रोताओं को संगीत और स्वांगों से मुग्ध करते थे चारों ओर श्रोता बहुसंख्या में बैठे हैं और मध्य में तम्बाकू का दर है और मंच पर स्वांग और कविता हो रही है।

खान पान के चटोरेपन में भी थानेसर के नागरिक कुछ कम नहीं थे। ज्योनारें (दावतें) छ: छ: मास तक चलती थीं। क्योंकि प्रायः ब्राह्मण अपने यजमानों के घर दूसरे ग्रामों में गए हुए होते थे और जब जब वह आते ज्योनार में सम्मिलित होते रहते थे। ज्योनार का श्रीगणेश होने से पूर्व खान पान की समस्त सामग्री एक कमरे में रख दी जाती थी। उस कमरे को भंडार कहते थे। खाना परोसने वाले जब भंडार में जाते तो खाने वाले आमन्त्रित लोगों में से कुछ लोग द्वार रोक लेते थे। अब एक संघर्ष आरम्भ हो जाता था। परोसने वाले बलपूर्वक बाहर आने का प्रयत्न करते और खाने वाले बलपूर्वक उनको बाहर न आने देते थे। इस संघर्ष में मनों खाने की सामग्री चूरा हो जाती। अब या तो परोसने वाले खाने वालों पर विजय प्राप्त करके बाहर आ जाते अथवा हार मानकर बाहर आते। इस संघर्ष को थानेसर की भाषा में दरका कहते थे।

कोई घर ही ऐसा होता होगा नहीं तो प्राय समस्त घरों में बादाम पिस्ता और भिन्नभिन्न प्रकार ऋतु-अनुसार खान-पान की सामग्री बनती थी और जो बाजार में हलवाइयों की दुकानों पर खाया जाता वह पृथक। नगर में कई अखाड़े कुश्ती मुगदर और लाठी चलाने के भी थे। मेलों पर जम कर कुश्तियों के दंगल होते। पुण्य पर्वों के अवसरों पर लाठी तलवार, पटेबाजी और गतके के हाथ दिखाए जाते थे। यह सत्य है कि उन दिनों थानेसर नगर वास्तव में थानेसर नगर था। यद्यपि आजकल नगर की जनसंख्या उस समय की जनसंख्या से कहीं अधिक है परन्तु वह बात कहाँ जो तब थी।

उस युग में थानेसर राग रंग में डूबा हुआ लखनऊ के शाह वाजिदअली के युग से कम न था। बेफिक्री के जमाने थे और बेफिक्री का खान-पान था। न तो जीविका की चिन्ता थी और न संसार का ग़म। मित्रता ऐसी कि आयु भर निभा दी और शत्रुता ऐसी कि एक बार लड़ पड़े तो कभी शत्रु का घर तो अलग मुहल्ले की ओर भी मुंह न किया। सच्चा वक्त था और सच्चे लोग। उनकी मित्रता और शत्रुता दोनों में मर्यादा थी।

उसी काल में एक और उर्दू-कवि और विद्वान मीर इनायतअली साहिब भी हो गए हैं। उन्होंने आठ पुस्तकें उर्दू कविता में लिखी हैं। पुस्तकों के नाम हैं। मसनवीनए हमीं वजीरा इनायतअली (हिन्दी भाषा में), दीवाने इनायत, बारहमासा, किस्सा शाह रूम, तारीख इबरतनमाय थानेसर का कमाल व जवाल, हालात ख़स्ताकाम और चमकसाए। इन पुस्तकों में केवल हालात ख़स्ता काम प्राप्य है शेष नहीं मिलतीं।

कुरुक्षेत्र में भयंकर दुर्भिक्ष और बाढ़

२७ नवम्बर, १८८२ ईस्वी १६ मुहर्रम १३०१ हिजरी को शुक्रवार की रात्रि में आकाश से अनगिनत तारे टूटे। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे आकाश पर फुलझड़ियाँ छूट रही हैं। रात्रि भर यही दशा रही।[1] थानेसर पर जहाँ मनुष्यों द्वारा संकट आए वहाँ मौसम ने भी जुल्म तोड़े। सौभाग्य से उस समय की दशा पर थानेसर के एक मुसलमान उर्दू कवि ने प्रकाश डाला है। इस कवि का नाम था हाजी मीर साहिब सईयद इनायतअली पुत्र सईयद नरवाजअली साहिब बुखारी चीशती कादरि थानेसर। इस पुस्तक का नाम है 'तारीखे ख़स्ता काम माए हालात ख़स्ताना काम"। यह पुस्तक उर्दू कविता में है जो १९ १ ईस्वी में सढौरा जिला अम्बाला में छपी थी। १८९९ ईस्वी और १९०० ईस्वी में थानेसर में प्रथम तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा और अगले वर्ष बाढ़ आई थी जिसके परिणाम स्वरूप न केवल थानेसर नगर अपितु कुरुक्षेत्र प्रदेश बिलकुल तिल पट हो गया था।

"इस दुर्भिक्ष में बलवान बलहीन हो गए। मोटों के मुटापे भाग गए। अमीरों की अकड़ बाजों की अकड़ जाती रही। लोग खेल-तमाशे भूल गए। फल-फूल सूख गए। गायों के दूध कम हो गए। चारों ओर केवल भूख का राज्य था।

(१) तारीखे ख़स्ता काम लेखक मीर इनायतअली थानेसरि पृ १९।

सौ उन्नीस छप्पन साल हुआ ।
जब नाशक छप्पना काल हुआ ॥
इस साल से जग पामाल हुआ ।
संसार का खस्ता हाल हुआ ॥
यह कोरा काल बल पड़ा ।
पर जगल सब नर बस पड़ा ॥
दुख खल्क पे पदमों सख्त पड़ा ।
ना उनके मुँह में पत्र पड़ा ॥
यह कहत निहायत सख्त पड़ा ।
सरसब्ज देश पे धन्न पड़ा ॥
धमधन्त उठे घन घोर घटा ।
फल फूली नाटक खेल हटा ॥
सब थकि भूले राग पटा ।
जब काल ठाट से मान हटा ॥

अकाल तो पहले भी पड़ चुके थे परन्तु छप्पना काल अधिक सख्त है। इसमें न तो जंगलों में घास न खेतों में अनाज हुआ जिसे खाकर मनुष्य या जानवर जीवित रह सकें। बिलकुल वर्षाकाल में वर्षा बन्द होकर धूप ने समस्त अनाज घास सुखा दिए। पृथ्वी की सूरत की यह दशा है कि कहीं हरियाली का नाम-निशान नहीं। जैसे कि धरती के ऊपर आग जला कर तांबा बना दिया है।

सावन में बारिश माह हुई ।
यह मौसम कुल दो माह हुई ॥
इतन में जनता तबाह हुई ।
घर वतन छोड़ कर राह हुई ॥
बरसात में बादे खिजाँ चली ।
हुई मुल्क जरायत फूनी चली ॥[1]

इस काल में अनाज और घास को छोड़कर सब वस्तुओं की कदरदी हो गई। पानी ऊपर और धरती तक किसी ने नहीं पूछे। लोगों के कारोबार बन्द हो गए। मारवाड़ी और पच्छाधे जाति के लोग हजारों की संख्या में थानेसर आकर भूखों मरने लगे क्योंकि यहाँ तो पहले ही अकाल पड़ा हुआ था। सरकार ने कुछ चन्दा इकट्ठा किया कुछ अपने खजाने से दिया। नवम्बर १८९९ ईस्वी में तीन लाख रुपए इकट्ठा करके कुरुक्षेत्र तीर्थ की खुदाई प्रारम्भ हुई जिसमें भूखों के पेट पलने लगे। थानेसर में दुर्भिक्ष कैम्प डाला गया। सरकार ने राज्य-कर छोड़ दिया। बैलों बीजों के लिए हजारों रुपया दिया। आकाश से पानी की

---

(१) वार्ता छप्पना काल [illegible] पृष्ठ [illegible]।

अपैसा लाल रंग की रेत बरसती थी। लोगों ने मकान, धरती, गहने लड़कियां बहनें और भैंसियां बेच दीं।[1]

जनवरी १९०० ईस्वी में वर्षा हुई। लोगों ने खेत जोतकर बो दिए।

अब सस्ता रब ने बसाए दिया।
जो माघ में मिंह बरसाए दिया॥
धरती पर रंग लगाए दिया।
पृथ्वी को सबर बंधाए दिया॥
इस मिंह से खाड़ी पार हुई।
मह खुशियां घर घर बार हुई॥

परन्तु ९ अप्रैल १९०० ईस्वी में जब खेती पक कर तैयार हुई तो बड़े जोर से वर्षा और ओले पड़े। एक-एक ओले का भार दो सेर का था। सावन और भादों की भांति वर्षा हुई। पक्की खेती भी अनाज खेत में ही बरबाद हो गए।

जब पक खेती तैयार हुई।
तब बारिश मूसलधार हुई॥
और ओलों की बोछार हुई।
सब गिर खेती मिस्मार हुई॥
गुस्सा हुआ यह बारिश घड़ेली का।
हुआ नाश मुँह आई खेती का॥[2]

इन भयंकर बातों को देखकर कवि इनायतअली भगवान् से प्रार्थना करता है—

है तुझ से इनायत की दुआ।
मेरा वतन थानेसर बसे सदा॥

इस प्रकार सम्वत् छप्पन बीत गया और सम्वत् सत्तावन का आरम्भ हुआ।

अब साल सत्तावन चढ़ आया।
नहीं मुँह भी मिंह ने दिखलाया॥
जब दूरद न बादल नजर आया।
तब जनता का दिल घबराया॥
बैसाख, जेठ जब गुजर गए।
उठने को रबी के उजर गए॥
तब हम पे करम मौला का हुआ।
सम्मत का नक्शा दिया जमा॥

---

(१) छपीये छप्पना वाला कैसेट मीर इनायतअली पृ २२, २४ २१।
(२) ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ४०।

आखीर साढ़ से मिह बरसा ।
दुनियाँ का दुखड़ा दर्द गया ॥
फिर मिह हा मिह बह मिह पड़ा ।
दिन रात वर्षा बारिश का कड़ा ॥
सब धरती पानी पानी हुई ।
रो बड़े खूब तुग़यानी हुई ॥
हो जल थल सब रवानी हुई ।
दुनियाँ की विपद पुरानी हुई ॥[1]

१६ जून १८०० ईस्वी को फिर वर्षा हुई । काली घटा ऐसी छाई कि दिन में रात हो गई ।[2] १५ जौलाई १८०० ईस्वी को फिर ज़ोरदार वर्षा हुई कि बाढ़ आ गई । बाढ़ का जल थानेसर की बस्ती तक चढ़ गया । थानेसर एक टापू बन गया । जो लोग नगर से बाहर गए हुए थे वे पानी के कारण नगर से कट गए और अपने प्राणों की रक्षा के लिए वृक्षों पर चढ़ गए । तीसरे दिन जब जल कम हुआ तो घर वापिस आए । चार मनुष्यों को, जिनमें हमारे वर्णकर्ता का नम्बरदार मोहकम भी था हम स्वयं पानी से निकाल कर लाए । पानी का शोर इतना था कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती थी । थानेसर में दो कुएं ऐसे बाढ़ के जल द्वारा भरे कि धरती का ब्रह्माण्ड फूट गया । प्रथम नवीं और दसवीं अगस्त १८०० ईस्वी को पुनः ज़ोर-शोर से वर्षा हुई । वर्षा के परिणाम स्वरूप बीमारियाँ फूट पड़ीं । कोई परिवार और घर ऐसा शेष न रहा जिस पर बीमारी का दुष्प्रभाव न पड़ा हो । घर के घर और खानदान के खानदान समाप्त हो गए ।[3]

२

दुर्भिक्ष अधिक वर्षा बीमारियों और बाढ़ के कारण थानेसर नगर उजाड़ हो गया । जनसंख्या में जितनी कमी हुई उसका वर्णन इस प्रकार है ।

ब्राह्मण

मिसरावालों के तीस घर थे अब इस खानदान का एक भी व्यक्ति शेष नहीं रहा । पाहवों के सौ घर थे अब एक मनुष्य भी बाकी नहीं है । छिब्बरों के तीस घर थे अब कोई इस वंश से नहीं है । [illegible] के चालीस घर थे अब एक भी प्राणी शेष नहीं । ठेकसान खानदान के पचास घर थे सबके सब साफ़ हो गए । [illegible] के सत्तर घर थे जिनमें से केवल एक व्यक्ति शेष है । मैंगुवों के सत्तर घर थे सब साफ़ हो गए । पूरों के साठ घर थे अब दो घर रह गए हैं । इसी प्रकार चाकमान काठ सौसद, मोने और मोटे सब खान दान समाप्त हो गए ।

---

(१) तारीख़ [illegible] और [illegible] पृ ७५ ।
(२) " " । " " " ७६ ।

महाजन बनिये

डोगियों के छः घर थे सब समाप्त हो गए। बावन हजारियों के सात घर थे अब कोई शेष नहीं। सोनी के आठ घर थे अब कोई नहीं। मिरजापुरियों के दस घरों में से केवल चार शेष हैं।

खत्री

मचम खत्रियों के चार सौ घर थे जो सब समाप्त हो गए। मोतड़ी खत्रियों के तीन सौ घर थे अब एक भी शेष नहीं।

राजपूत

रावत राजपूतों के दो सौ घरों में से कोई शेष नहीं।

जैन

सौ घर जैनों के थे जिनमें से केवल एक घर बाकी है।

कायस्थ

कायस्थों के ८० घर थे अब केवल दो हैं।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत से खानदान थे जैसे भंगी, मोड़ इत्यादि जिनमें से एक भी प्राणी जीवित नहीं है और बहुत से खानदान ऐसे हैं जो बहुत बड़े-बड़े थे परन्तु अब बहुत ही कम लोग उनमें से शेष हैं। पानीपत नगर में एक भी खानदान किसी भी जाति का ऐसा नहीं है जिसकी जनसंख्या पर प्लेग के काल का दुष्प्रभाव न पड़ा हो।[1]

---

(१) पण्डित राजाराम भारद्वाज पुत्र पण्डित शंकरलाल राजवैद्य, पुरबैन, आयु ८२ वर्ष और पण्डित भैरोंदत्त आयु [illegible] वर्ष के कहने के आधार पर।

कुरुक्षेत्र रक्षार्थ अंग्रेज़ों द्वारा दिए गए फ़रमान

कुरुक्षेत्र के ब्राह्मणों ने गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि कुरुक्षेत्र के तीर्थों से मछलियाँ न पकड़ी जाएं, सींगदार पशु न मारे जाएं और तीर्थों के वृक्ष न काटे जाएं। हिज़ एक्सीलेंसी ने कुरुक्षेत्र की पवित्रता और उस श्रद्धा को जो कि हिन्दू थानेसर में रखते हैं पर विचार करते हुए प्रसन्न होकर साथियों को आदेश दिया कि ब्राह्मणों की इच्छा के सम्मान प्रति स्वरूप कोई ऐसा कार्य न करें जिससे कि उनका मन दुःखित हो।

१० जनवरी १८१२ ईस्वी

हस्ताक्षर—जी० बसर्ड
पोलिटिकल एजेंट अम्बाला

× × ×

जाहिर बरहमाहे थानेसर तीर्थ हाए बस्यार परस्तिशगाह हनूदान अस्त व हंगाम रौनक़ अफ़रोज़ी जनाब मुस्ताब मुअल्ली अलक़ाब लाट गवर्नर जनरल बहादुर दामेइक़बालहू ब मुक़ाम थानेसर व मुजीब मारूज़ा ब्राह्मणान् व हनूदान सकना आँजा बराए मुहाफ़ज़त माहियान व जानवरान व हायम तयूर वग़ैरह अज़ पेशगाह साहिब मुहतशम मसमा व खैरख्वाही रिआया व पासे मज़हब अहाली मुमानअत कुल्ली शुदा बूद। के कसे माही अज़ तालाब न ख्वाहद गिरिफ़्त व दरख़्त न ख्वाहद तराशीद व जानवरान तयूर व दवाब रा न ख्वाहद कुश्त। लिहाज़ा मुताबिक़ हुक्म साहिब आलीशान मुअज़्ज़म अलैह इश्तहार दादा मि शवद। के हिस्बुल हुक्म साबिक़ दर ईं बाब अहदे अज़ शावर व शारर आनजा व ना सकनाए आनजा के बरहमाहे हनूदान बाइस व तकलीफ़ व ईज़ा रसानी हनूदान व गिरिफ़्तन माहियान बर ख़िलाफ़ मज़हब आनहा व तराशीदन अशजार मुक़ामात तीर्थहाए व गिरिफ़्तन माहियान अज़ तालाबहाए व कुश्तन जानवरान व तयूर व चमूस जामोकशी वग़ैरह मुरतकब न गरदद।[1]

प्रथम अप्रैल १८३१ ईस्वी

---

(१) कुरुक्षेत्र तीर्थ के [illegible] पर पत्थर पर अंकित फ़रमान।

रहा गो वध की कोई घटना नहीं हुई और न ही मैंने कभी वहां गो वध होते देखा। मुझे भली प्रकार याद है कि इस बीच गर्मी का मौसम होने के कारण कोई सेना पिपली में नहीं ठहरी। यह रिपोर्ट डिप्टी कमिश्नर अम्बाला को भेज दी जावे।

हस्ताक्षर—सैयद मुहम्मद रशीद
एसिस्टेंट जिला सुपरिन्टेण्डेंट जिला देहली

× × ×

आठ दिसम्बर १८७७ ईस्वी को भेजे गए परवाने के अनुसार मैं शपथ पूर्वक बयान करता हूं कि मैंने पिपली में कभी गो-वध होते नहीं देखा। सायंकाल की सैर के समय मैं बहुत बार पिपली के चारों ओर घूमता था परन्तु मुझे गौ-वध के कोई ताजा चिन्ह नहीं मिले। हां यह मुझे याद है कि पुरानी हड्डियां वहां पड़ी रहती थी। यह चार दीवारी देवीदासपुर गांव की ओर कच्चे पोखर के पास थी। जब मैंने वहां गौ-वध ही होते नहीं देखा तो वहां मांस बिकते कैसे देखता। जब अपनी सेना वहां ठहरती थी तो थानेसर के नहीं बल्कि वह कसाई जो सेना के साथ होते थे पड़ाव के एक कोने में गौ-वध करते थे। मैं पिपली में प्रथम फरवरी १८६५ ईस्वी से १५ मई १८७१ ईस्वी तक रहा। इसलिए यह बयान अपने आठ वर्ष के अनुभव के बल पर दे रहा हूं।

हस्ताक्षर—बहादुर हसन तहसीलदार

× × ×

अम्बाला

८ २ १८७८

आठ दिसम्बर १८७७ ईस्वी के परवाने द्वारा दी गई आज्ञानुसार जो मुझे सरफ अदालत द्वारा प्राप्त हुआ के विषय में मैं बयान करता हूं कि मैं दो दिसम्बर १८७१ ईस्वी से प्रारम्भ अक्तूबर १८७५ ईस्वी तक पिपली रहा। मैं शपथ पूर्वक कहता हूं कि जहां तक मेरी स्मृति मेरा साथ देती है वहां तक मैंने कभी थानेसर के कसाइयों को पिपली में गौ-वध करते नहीं देखा। प्राय गो मांस अंग्रेज सेना प्रयोग करती थी परन्तु उनके साथ अपने कसाई होते थे। सेना के आने पर मैंने न जानवर मारने की चार दीवारी देखी और न गो

(१) श्री देवानन्द नामस्वामी रजिस्टर्ड [illegible]

मांस बिकते देखा। सराये के निकट एक दुकान थी जिस पर कसाई बकरे और भेड़ का मांस बेचा करता था। इसके अतिरिक्त मैंने कुछ नहीं देखा।

हस्ताक्षर—कुतबुद्दीन मुनसिफ़

× × ×

प्रार्थनापत्र

हसन बख्श, इलाही बख्श इत्यादि कि थानेसर और पिपली में जानवर मारने की आज्ञा दी जाए

थानेसर शहर में हिन्दुओं की बहुसंख्या है और पिपली के पास है। पिपली में जानवरों को मारने की आज्ञा देना हिन्दुओं के मन को दुःख पहुँचाना और उनके धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध जाना है। इसके अतिरिक्त वहाँ आजकल कोई बधशाला भी नहीं है। प्रार्थना पत्र दफ़्तर दाखिल किया जाए।

आठ मार्च १८७८ ईसवी

हस्ताक्षर—मेजर ए० बी० ब्रुकन
डिप्टी कमिश्नर अम्बाला

× × ×

कैम्प पिपली जिला अम्बाला—

विषय—प्रार्थना पत्र इलाही बख्श पुत्र मीर बख्श, अकबर पुत्र नबी बख्श इत्यादि कसाई थानेसर पिपली के पास गौ बधार्थ बध-शाला बनाने की अनुमति दी जाए।

अदालत डिप्टी कमिश्नर अम्बाला

थानेसर के ब्राह्मणों और कसाइयों के सामने मैंने वह स्थान देखा कि जहाँ के लिए प्रार्थना की गई है। मैं तहसीलदार थानेसर की सम्मति से पूर्णतया सहमत हूँ और वहाँ बधशाला खोलने की आज्ञा नहीं देता। प्रार्थना ना मन्ज़ूर। यदि प्रार्थी किसी और स्थान के के लिए प्रार्थना करें तो कर सकते हैं।

११४ १८८७ ईसवी

हस्ताक्षर—जो सी० ब्राउन
डिप्टी कमिश्नर अम्बाला
कैम्प पिपली

---

(१) ११ [illegible] कुरुक्षेत्र के सोजन्य से।

से भी रोके गए हैं और इसलिए ख्याल नहीं किया जा सकता कि वे अपने जाहिरी मुकदमा किसी तौर से उस जगह पर काबिज थे और दावा बर मूजब हाल धारा दफा ४२ ऐक्ट दादरसी खास माना है क्योंकि मुद्दियान दादरसी यानी कब्जा का दावा कर सकते हैं। सिवाए इसके मिसलजात मुहल्ला वकील मुद्दायलहुम मुतदायरा फैसला साहिब डिस्ट्रिक्ट जज से जाहिर होता है सिवाए पहली अदालत की इजाजत व मुजिब दफा १० जाब्ता दिवानी की धारा ४७० मुद्दियान बतौर कायम मुकाम जुमला मुसलमान के दावा इस्तक्रार व इस्तैमाल ईदगाह का नहीं कर सकते। बस हम फैसला बहाल रखते हैं और अपील खारिज करते हैं। खर्चा-ब जिम्मे अपीलांट। अपीलांटों की असालतन समाअत हुई। साहबजादाराम रिस्पोंडेन्ट की तरफ से हाजिर हुआ।

× × ×

१७ दिसम्बर १८८८ ईस्वी को साहिब डिप्टी कमिश्नर ने हुक्म दिया कि मुसलमान पहाड़ गिरी से मांस लाएं और आम तौर पर थानेसर में मांस फरोख्त करने की मुमानत हुई।

× × ×

२१ मई १८८९ ईस्वी को मुसलमानों की तरफ से गोश्त की दुकान के लिए इजाजत तलब होने पर मिस्टर कनफर्ड साहिब डिप्टी कमिश्नर अम्बाला ने नामंजूर फरमाई।

× × ×

हिज ऐक्सीलेंसी पंजाब के गवर्नर साहिब अपने वर्षा ऋतु के दौरे पर ५ अगस्त १९२१ ईस्वी को थानेसर पधारे। वह हिन्दुओं के अति प्राचीन ऐतिहासिक पवित्र तीर्थों और मन्दिरों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जीर्णोद्धार समिति की प्रार्थना पर कुरुक्षेत्र पुस्तकालय की आधारशिला रखी। इस शुभावसर पर बहुत से ब्राह्मण पुरोहित पण्डित और सनातन धर्म महामण्डल के नेताओं ने गवर्नर साहिब का स्वागत किया। अपने आगमन की स्मृति में सर ऐडवर्ड मैक्लेगन के० सी० एस० आई० के० सी० आई० ने २५० रुपए ब्राह्मण पंचायत में उसी प्रकार बांटने को दिए जिस प्रकार गवर्नर जनरल इण्डिया के ५०० रुपये १८५१ ईस्वी में बांटे गए थे। गवर्नर साहिब की आशा है कि सरकारी अफसर जो इस

(१) श्री पण्डित [illegible] रजिस्ट्रार कुरुक्षेत्र के सौजन्य से।

स्थान पर आएँ इसकी पवित्रता का भली प्रकार ध्यान रखें और थानेसर तथा उसके आस पास के ऐतिहासिक और प्राचीन मंदिरों इत्यादि की रक्षा करने में सहायता दें।

गवर्नमेंट हाउस लाहौर
१४।११।१९२१

हस्ताक्षर
जे० सी० एस० बलेक मेजर
प्राइवेट सेक्रेट्री गवर्नर पंजाब

× × ×

डिप्टी कमिश्नर जिला करनाल की ओर से ला० बेनीप्रसाद उप-प्रधान म्युनिसिपल कमेटी और दूसरे प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करने वालों के नाम हिज़ ऐक्सीलेंसी गवर्नर पंजाब का आज्ञा-पत्र नम्बर ७३१/जी० तारीख करनाल २६ मई १९२१ ईस्वी।

आपके प्रथम मार्च १९२४ ईस्वी के प्रार्थना-पत्र पर मुझे आज्ञा दी गई है कि गवर्नर साहिब कौंसिल सहित यह आज्ञा देते हैं कि डिप्टी कमिश्नर को आदेश दिया गया है कि ईद पर बलि दिए गए बकरे का मांस पिपली से अंधेरा हो जाने के पश्चात् एक विशेष मार्ग से नगर में लाया जाए, जिससे कि दूसरे लोगों का मन दुःखी न हो। आज्ञा-पत्र की एक प्रति जो मैंने कमिश्नर अम्बाला डिवीजन की सम्मति से गवर्नर की आदेश-पूर्ति के लिए प्रकाशित की है आपको भेजी जा रही है।

२४-४-२१

हस्ताक्षर—डिप्टी कमिश्नर

× × ×

कुरुक्षेत्र : एक सामान्य परिचय

कुरुक्षेत्र देहली के उत्तर में ९९ मील और अम्बाला के दक्षिण में २४ मील देहली-पानीपत अम्बाला रेलवे लाइन पर जंक्शन स्टेशन है। कुरुक्षेत्र स्टेशन पर पैसिंजर ऐक्सप्रैस और मेल गाड़ी ठहरती हैं। जी० टी० रोड के मार्ग पिपली से कुरुक्षेत्र तीन मील पक्की सड़क पर पश्चिम में है। कार और बस द्वारा भी कुरुक्षेत्र आया जा सकता है। कुरुक्षेत्र से जींद को रेलवे लाइन जाती है। कुरुक्षेत्र से पक्की सड़कें पेहवा, झांसा और पिपली लाडवा यमुना नगर होकर सहारनपुर और हरिद्वार जाती हैं। कुरुक्षेत्र स्टेशन पर तांगा, बस और साईकिल रिक्शा मिल जाते हैं। कुरुक्षेत्र स्टेशन से निकलते ही बस्ती आरम्भ हो जाती है।

यात्रियों के ठहरने के स्थान

कुरुक्षेत्र में यात्रियों के ठहरने का कोई सुप्रबन्ध नहीं है। जिस प्रकार अन्य धर्मस्थानों पर सुन्दर धर्मशालाएं अथवा होटल्स हैं और उन धर्मशालाओं का सुचारु रूप से प्रबन्ध होता है उस प्रकार का कोई प्रबन्ध सरकार अथवा जनता द्वारा कुरुक्षेत्र में प्राय नहीं ही है। ऐसा जान पड़ता है कि भारतवर्ष के यात्रियों एवं सरकार का ध्यान न तो इस ओर कभी गया है और न किसी ने आकर्षित ही कराया है। यद्यपि श्री पंचायत ब्राह्मणान् रजिस्टर्ड कुरुक्षेत्र जो कि कुरुक्षेत्र के धार्मिक स्थानों एवं तीर्थों का संरक्षण व प्रबन्ध करती है, सरकार और जनता का ध्यान इस कमी की ओर दिलवाती रहती है परन्तु अभी वह अपने प्रयास में सफल नहीं हुई। वास्तव में कुरुक्षेत्र में एक नहीं अपितु काफी सुन्दर धर्मशालाओं और होटलों की आवश्यकता है।

कुरुक्षेत्र में एक बड़ी अनाज मण्डी, सुभाष मण्डी, तार, डाक और टेलीफोन-घर, स्टेट बैंक और सेन्ट्रल कोआपरेटिव बैंक, पुलिस स्टेशन, तहसील, एस० डी० एम० कोर्ट, बी० डी० ओ० आफिस, बर्फ के दो कारखाने, आठ डॉक्टर, एक प्राथमिक स्कूल पंजाब सरकार द्वारा और दो प्राथमिक स्कूल, तीन हाई स्कूल, एक सिनेमा हाल और कई बाजार तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय है। प्राय रात-दिन चहल-पहल रहती है। कुरुक्षेत्र में ही बसों का अड्डा है।

थानेसर शहर

कुरुक्षेत्र रेलवे स्टेशन से सवा मील पश्चिम में थानेसर शहर है। एक पक्की सड़क कुरुक्षेत्र और थानेसर को मिलाती है। वास्तव में थानेसर का नाम महादेव के नाम पर स्थाणीश्वर था जो बिगड़ते-बिगड़ते थानेसर बन गया। [illegible] में आज भी थानेसर

शहर का नाम नहीं है बल्कि मौजा बरां कलां बरां खुरद और बरां बेगा है। इन तीनों बरों को मिलाकर थानेसर शहर है। थानेसर शहर छठी शताब्दी में सम्राट् हर्षवर्धन के पूर्वज राजा पुष्यभूति ने बसाकर अपनी राजधानी बनाया था। राजा पुष्यभूति शैव थे। उन्होंने राजधानी का नाम भगवान शंकर के नाम पर स्थाण्वीश्वर और जनपद का नाम श्रीकण्ठ रखा था। सम्राट् हर्षवर्धन ने भी अपने पुरखाओं की भांति थानेसर को अपनी राजधानी बनाया परन्तु कुछ वर्ष के पश्चात् राज्य का विस्तार होने के कारण उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बना लिया। सन् १०१४ ईस्वी में महमूद गजनवी ने थानेसर को लूटकर आग लगा दी और बहुसंख्या में नागरिकों को पकड़कर ले गया। थानेसर शहर तीन चोटियों पर बसा हुआ है। बीच की चोटी पर कभी किला था जहां आज खण्डहर शेखचेहली का मकबरा और हजरत कुतुब जलालुद्दीन का मजार है। पूर्वी चोटी पर शहर बसा हुआ है और पश्चिमी चोटी पर कभी मुहल्ला और अब बाहरी ग्राम बसा हुआ है। मुगल सम्राटों के बाद भंगासिंह और भागसिंह ने थानेसर शहर पर अधिकार कर लिया और शहर को दो भागों में बांटकर राज्य किया। शहर का पूर्वी भाग भंगासिंह के अधिकार में था और पश्चिमी भागसिंह के अधिकार में था। सन् १८१९ ई० में भंगासिंह के पुत्र फतहसिंह की मृत्यु के पश्चात सन् १८५० ई० तक विधवा रानियों ने राज्य किया। १८५० ई० में अंतिम सिख रानी की मृत्यु के पश्चात् थानेसर पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अधिकार कर लिया। भंगासिंह और भागसिंह थानेसर के स्वतंत्र सरदार नहीं थे बल्कि वे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कर देते थे। मुगल सम्राट् फर्रुखसियर ने थानेसर का नाम इसलामाबाद रख दिया था परन्तु वह प्रचलित न हो सका। सन् १८५० ई० से १५ अगस्त सन् १९४७ ई० तक अंग्रेजों का राज्य रहा। कुरुक्षेत्र बीड़ रेलवे ब्रांच लाइन पर थानेसर शहर का स्टेशन है। परन्तु यह स्टेशन भी शहर से दो फर्लांग के अन्तर पर है। इस स्टेशन पर रिक्शा और तांगे नहीं मिलते। कुरुक्षेत्र थानेसर सड़क पर दोनों ओर नई इमारतें बन रही हैं। गीता हाई स्कूल की इमारत प्रायः बन चुकी है। इस प्रकार धीरे-धीरे कुरुक्षेत्र और थानेसर एक बनते जा रहे हैं। थानेसर की नगरपालिका बहुत पुरानी है। नगरपालिका स्वास्थ्य सफाई और प्रकाश का प्रबन्ध करती है। नगर पालिका दो श्रेणी की है जिसमें १३ निर्वाचित सदस्य हैं। नगर के पूर्वी भाग में टाउन हाल डिस्पेन्सरी जैसा अस्पताल और धर्मशाला है। धर्मशाला की दशा धर्मशालाओं जैसी तो नहीं है परन्तु यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध है। तीर्थयात्रा के लिए आए हुए बहुत कम यात्री धर्मशाला में ठहरते हैं। अधिकतर यह धर्मशाला बारातों के लिए है। नगर में चार तंग बाजार हैं जिनमें आवश्यकता की प्रत्येक सामग्री मिल जाती है। पहले नगर के प्रत्येक मुहल्ले में धर्मशाला थी परन्तु अब नहीं है। देश-विभाजन से पहले नगर की जन-संख्या पांच हजार के लगभग थी विभाजन के पश्चात् मुसलमानों के चले जाने पर जनसंख्या दस हजार हो गई। १९५७ में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के बनने पर नगर में समृद्धि आई और जनसंख्या १८ हजार हो गई।

सन्निहित तीर्थ

कुरुक्षेत्र स्टेशन से एक मील पश्चिम में पक्की पहेवा रोड है। तांगे बस रिक्शा इत्यादि कुरुक्षेत्र स्टेशन से मिल जाते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार रन्तुक से ओजस तक पावन तीर्थ से चतुर्मुख तक विश्वेश्वर से हस्तिपुर तक तथा वृद्धकन्या से नागवती नदी तक सन्निहित तीर्थ की सीमा है। प्रत्येक मास की अमावस्या को ब्रह्मादि देव ऋषिगण तथा समस्त विश्व के तीर्थ यहाँ पर इकट्ठे होते हैं। स्वयं भगवान विष्णु यहाँ सदैव निवास करते हैं इसी कारण इसका नाम सन्निहित तीर्थ है। इसमें स्नान कर भगवान विष्णु को नमस्कार करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है तथा बैकुण्ठ-लोक की प्राप्ति होती है। सूर्य-ग्रहण व चन्द्र-ग्रहण के समय सन्निहित तीर्थ में स्नान और दान-पुण्य करने से दान का पुण्य अक्षय होता है। सन्निहित तीर्थ पाँच सौ गज लम्बा और डेढ़ सौ गज चौड़ा है। पूर्वी और पश्चिमी तट थोड़े कच्चे हैं और दक्षिणी तट बिल्कुल कच्चा है। तीर्थ में वर्षा का जल आता है। तीर्थ पर सूर्य-ग्रहण चन्द्र-ग्रहण सोमवती अमावस्या दशहरा और वामन द्वादशी के मेले लगते हैं। प्रायः कुरुक्षेत्र का पंडा सम्प्रदाय इसी तीर्थ पर मिल जाता है। सन्निहित तीर्थ के पश्चिमी तट पर दर्शन योग्य स्थान यह है। मन्दिर श्री ध्रुव नारायण—श्री पंचायत ब्राह्मणान् रजिस्टर्ड द्वारा निर्मित है। मन्दिर में ध्रुव भक्त और नारायण की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिर का शृंगार अलौकिक है। यहाँ यात्रियों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा मिल सकती है। श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर दक्षिण चौक निर्माणकला मे बाबा शिव गिर द्वारा सम्वत् १८९३ मे निर्मित हुआ। यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध है। कुछ वर्ष से यह मन्दिर उपेक्षित था परन्तु वर्तमान महन्त के परिश्रम से अब सुव्यवस्था है।

गुरुद्वारा छेवीं पातशाही

यह गुरुद्वारा सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्दजी की स्मृति में एक टीले पर निर्मित किया गया है। पहेवा रोड के बिलकुल साथ और सन्निहित तीर्थ व थानेसर नगर के मध्य बना हुआ है। गुरु हरगोविन्द कराह ग्राम से होते हुए जब कुरुक्षेत्र यात्रा के लिए पधारे तो उन्होंने यहाँ विश्राम किया था। सन् १९४७ से प्रथम इस गुरुद्वारे का छोटा सा रूप था परन्तु सन् १९४७ में कुरुक्षेत्र में पाँच लाख शरणार्थियों का विशाल कैम्प पड़ने से गुरुद्वारे का रूप निखरा और नए भवन निर्मित हुए। गुरुद्वारे में नित्य कथा और कीर्तन होता है। गुरुपर्वों पर विशेष समारोह होते हैं। यात्रियों के ठहरने और भोजन का प्रबन्ध है।

ब्रह्म सरोवर—कुरुक्षेत्र तीर्थ

कुरुक्षेत्र तीर्थ को ही ब्रह्म सरोवर कहते हैं। यह तीर्थ सन्निहित तीर्थ से प्रायः फर्लांग पश्चिम-दक्षिणी कोण पर है। एक पक्की सड़क दोनों तीर्थों को मिलाती है। इस तीर्थ की लम्बाई पाँच हजार फुट और चौड़ाई दो हजार दो सौ फुट है। उत्तर और पश्चिम के घाट पक्के बने हुए हैं। पूर्वी ओर आधे से अधिक घाट पक्के हैं शेष कच्चे हैं। दक्षिणी किनारा कच्चा है। श्री पंचायत ब्राह्मणान् रजिस्टर्ड कुरुक्षेत्र ने ग्यारह सौ फुट लम्बा घाट बनवाया है। पश्चिमी किनारे के घाट मिस्टर सारकेल उत्तरी किनारे के घाट मिस्टर सारकेल और कलकत्ते के मारवाड़ियों पूर्वी किनारे के घाट श्री रवारी श्री मोदी व श्री नरहरि विष्णु गाडगिल भूतपूर्व गवर्नर (राज्यपाल) पंजाब द्वारा बनाए गए हैं। तीर्थ प्रायः मिट्टी से भरता जा रहा है और छः मास केवल उत्तरी किनारे पर थोड़ा जल रहता है शेष सब सूख जाता है। तीर्थ में जल वर्षा द्वारा आता है। मिस्टर सारकेल ने सन् १८८१ में चौतंग नदी से एक नाला तीर्थ में जल लाने के लिए खुदवाया था। परन्तु अब सरकार की योजनानुसार नाला बन्द किया जा रहा है। इससे भविष्य में जल की समस्या बनी रहेगी। सारा तीर्थ कमल पुष्पों से भरा हुआ है। कुरुक्षेत्र तीर्थ के मध्य में दो पुल हैं। एक बाबा श्रवणनाथ जी के मन्दिर में जाता है दूसरा पुल मुगल सम्राट अकबर का बनवाया हुआ है जो चन्द्रकूप और बाण गंगा को जाता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्रह्माजी ने यहाँ सतयुग के आदि में ऋषियों तथा मुनियों सहित उत्तर वेदी नाम का यज्ञ किया था। यहाँ सूर्यग्रहण और सोमवती अमावस्या के पर्वों पर स्नान करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है।

कुरुक्षेत्र तीर्थ के पूर्वी कोण पर बाबा कासी कमली वाले का मन्दिर, धर्मशाला व अन्न क्षेत्र है जहाँ यात्रियों के ठहरने और साधु-महात्माओं के भोजन आदि का प्रबन्ध है। तीर्थ के उत्तरी तट पर बाबा गुन्छ का डेरा है। डेरे से मिलता हुआ गौड़ीय मठ है जहाँ चैतन्य महाप्रभु द्वारा संस्थापित सम्प्रदाय में बंगाली साधु रहते हैं। आगे चलकर महाराजा सीमावा द्वारा निर्मित श्री कृष्ण मन्दिर है। श्री कृष्ण मन्दिर के निकट श्री कुरुक्षेत्र पुस्तकालय और धर्मशाला है। यह पुस्तकालय देहली के सेठ रामचन्द्र लोहिया ने कुरुक्षेत्र जीर्णोद्धार समिति की प्रेरणा पर बनवाया था। इसके साथ ही बाबा श्रवणनाथ की बड़ी हवेली है, जिसके पूर्वी कक्ष में पाँच पाण्डव और शर-शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह की संगमरमर की मूर्तियाँ हैं। बाबा श्रवणनाथ सिद्ध पुरुष थे। तीर्थ के मध्य में टापू है जिसको मुगलपुरा कहते हैं। इस टापू में किला बनाकर मुगल सैनिकों की एक टुकड़ी रहती थी जो तीर्थ में यात्रियों का स्नान नहीं करने देती थी। पानीपत के तृतीय युद्ध के सेनानायक मराठा सरदार सदाशिव राव भाऊ ने किले का गिराकर मुगल सैनिकों को भगा दिया। तीर्थ के पश्चिमी कोण पर दसवें सिख गुरु गोविन्दसिंहजी का गुरुद्वारा है।

गीता मन्दिर

पहेवा रोड पर और कुरुक्षेत्र तीर्थ के बीच सेठ जुगलकिशोरजी बिरला द्वारा निर्मित गीता मन्दिर है जो राजपूत जैन शैली निर्माण-कला में बना हुआ है मन्दिर के चारों द्वार पश्चम हैं। मन्दिर मुख्य रूप से प्रदर्शित है। मन्दिर के अन्दर दीवारों पर हिन्दू और सिख

सन्निहित तीर्थ

कुरुक्षेत्र स्टेशन से एक मील पश्चिम में पक्की पहेवा रोड है। तांगे बस रिक्शा इत्यादि कुरुक्षेत्र स्टेशन से मिल जाते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार रन्तुक से ओजस तक पावन तीर्थ से चतुर्मुख तक विश्वेश्वर से हस्तिपुर तक तथा वृद्धकन्या से ओघवती नदी तक सन्निहित तीर्थ की सीमा है। प्रत्येक मास की अमावस्या को ब्रह्मादि देव ऋषिगण तथा समस्त विश्व के तीर्थ यहाँ पर इकट्ठे होते हैं। स्वयं भगवान विष्णु यहाँ सदैव निवास करते हैं, इसी कारण इसका नाम सन्निहित तीर्थ है। इसमें स्नान कर भगवान विष्णु को नमस्कार करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है तथा बैकुण्ठ-लोक की प्राप्ति होती है। सूर्य-ग्रहण व चन्द्र-ग्रहण के समय सन्निहित तीर्थ में स्नान और दान-पुण्य करने से दान का पुण्य अक्षय होता है। सन्निहित तीर्थ पाँच सौ गज लम्बा और डेढ़ सौ गज चौड़ा है। पूर्वी और पश्चिमी तट पक्के बने हैं और दक्षिणी तट बिल्कुल कच्चा है। तीर्थ में वर्षा का जल आता है। तीर्थ पर सूर्य-ग्रहण चन्द्र-ग्रहण सोमवति अमावस्या दशहरा और वामन द्वादशी के मेले लगते हैं। प्रायः कुरुक्षेत्र का पण्डा सम्प्रदाय इसी तीर्थ पर मिल जाता है। सन्निहित तीर्थ के पश्चिमी तट पर दर्शन योग्य स्थान यह है। मन्दिर श्री ध्रुव नारायण—श्री पंचायत ब्राह्मण् रजिस्टर्ड द्वारा निर्मित है। मन्दिर में ध्रुव भक्त और नारायण की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिर का शृंगार अलौकिक है। यहाँ यात्रियों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा मिल सकती है। श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर दक्षिण कोण निर्माणकर्ता में बाबा शिव गिर द्वारा सम्वत् १८९३ में निर्मित हुआ। यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध है। कुछ वर्ष से यह मन्दिर उपेक्षित था परन्तु वर्तमान महन्त के परिश्रम से अब सुव्यवस्था है।

गुरुद्वारा छेवीं पातशाही

यह गुरुद्वारा सिखों के छठे गुरु हरगोबिन्दजी की स्मृति में एक टीले पर निर्मित किया गया है। पहेवा रोड के बिल्कुल साथ और सन्निहित तीर्थ व थानेसर नगर के मध्य बना हुआ है। गुरु हरगोबिन्द कराह ग्राम से होते हुए जब कुरुक्षेत्र यात्रा के लिए पधारे तो उन्होंने यहाँ विश्राम किया था। सन् १९४७ से प्रथम इस गुरुद्वारे का छोटा सा रूप था परन्तु सन् १९४७ में कुरुक्षेत्र में पाँच लाख शरणार्थियों का विशाल कैम्प पड़ने से गुरुद्वारे का रूप निखरा और नए भवन निर्मित हुए। गुरुद्वारे में नित्य कथा और कीर्तन होता है। गुरुपर्वों पर विशेष समारोह होते हैं। यात्रियों के ठहरने और भोजन का प्रबन्ध है।

ब्रह्म सरोवर—कुरुक्षेत्र तीर्थ

कुरुक्षेत्र तीर्थ को ही ब्रह्म सरोवर कहते हैं। यह तीर्थ सन्निहित तीर्थ से प्रायः पश्चिम-दक्षिणी कोण पर है। एक पक्की सड़क दोनों तीर्थों को मिलाती है। इस तीर्थ की लम्बाई पाँच हजार फुट और चौड़ाई दो हजार सौ फुट है। उत्तर और पश्चिम के घाट पक्के बने हुए हैं। पूर्वी ओर आधे से अधिक भाग पक्के हैं, शेष कच्चे हैं। दक्षिणी किनारा कच्चा है। श्री पंचायत ब्राह्मणान् रजिस्टर्ड कुरुक्षेत्र ने ग्यारह सौ फुट लम्बा घाट बनवाया है। पश्चिमी किनारे के घाट मिस्टर मारकन उत्तरी किनारे के घाट मिस्टर मारकेन और कलकत्ते के मारवाड़ियों पूर्वी किनारे के घाट श्री रवारी श्री मोदी व श्री नरहरि विष्णु गाडगिल भूतपूर्व गवर्नर (राज्यपाल) पंजाब द्वारा बनाए गए हैं। तीर्थ प्रायः मिट्टी से भरता जा रहा है और छः मास केवल उत्तरी किनारे पर थोड़ा जल रहता है शेष सब सूख जाता है। तीर्थ में जल वर्षा द्वारा आता है। मिस्टर मारकेम ने सन् १८११ में चौतंग नदी से एक नाला तीर्थ में जल लाने के लिए खुदवाया था। परन्तु अब सरकार की योजनानुसार नाला बन्द किया जा रहा है। इससे भविष्य में जल की समस्या बनी रहेगी। सारा तीर्थ कमल पुष्पों से भरा हुआ है। कुरुक्षेत्र तीर्थ के मध्य में दो पुल हैं। एक बाबा श्रवणनाथ जी के मन्दिर में जाता है दूसरा पुल मुगल सम्राट अकबर का बनवाया हुआ है जो चन्द्रकूप और बाण गंगा को जाता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्रह्माजी ने यहाँ सतयुग के आदि में ऋषियों तथा मुनियों सहित उत्तर वेदी नाम का यज्ञ किया था। यहाँ सूर्यग्रहण और सोमवती अमावस्या के पर्वों पर स्नान करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है।

कुरुक्षेत्र तीर्थ के पूर्वी कोण पर बाबा काली कमली वाले का मन्दिर, धर्मशाला व अन्न क्षेत्र है जहाँ यात्रियों के ठहरने और साधु-महात्माओं के भोजन आदि का प्रबन्ध है। तीर्थ के उत्तरी तट पर बाबा मुरख का डेरा है। डेरे से मिलता हुआ गौड़ीय मठ है जहाँ चैतन्य महाप्रभु द्वारा संस्थापित सम्प्रदाय में बनाली साधु रहते हैं। आगे चलकर महाराजा सीतामा द्वारा निर्मित श्री कृष्ण मन्दिर है। श्री कृष्ण मन्दिर के निकट श्री कुरुक्षेत्र पुस्तकालय और धर्मशाला है। यह पुस्तकालय देहली के सेठ रामचन्द्र मोहिया ने कुरुक्षेत्र जीर्णोद्धार समिति की प्रेरणा पर बनवाया था। इसके साथ ही बाबा श्रवणनाथ की बड़ी हवेली है जिसके पूर्वी कक्ष में पाँच पांडव और शर शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह की संगमरमर की मूर्तियाँ हैं। बाबा श्रवणनाथ सिद्ध पुरुष थे। तीर्थ के मध्य में टापू है जिसको मुगलपुरा कहते हैं। इस टापू में किला बनाकर मुगल सैनिकों की एक टुकड़ी रहती थी जो तीर्थ में यात्रियों को स्नान नहीं करने देती थी। पानीपत के तृतीय युद्ध के सेनानायक मराठा सरदार सदाशिव राव भाऊ ने किले को गिराकर मुगल सैनिकों को भगा दिया। तीर्थ के पश्चिमी कोण पर दसवें सिख गुरु गोविन्दसिंहजी का गुरुद्वारा है।

गीता मन्दिर

पहवा रोड पर और कुरुक्षेत्र तीर्थ के बीच सेठ युगलकिशोरजी बिरला द्वारा निर्मित गीता मन्दिर है जो राजपूत जैन शैली निर्माण-कला में बना हुआ है मन्दिर के चारों ओर उपवन हैं। मन्दिर सुचारु रूप से प्रकाशित है। मन्दिर के अन्दर दीवारों पर हिन्दू और सिख

सन्तों के संगमरमर पर अंकित चित्र और उनकी वाणियाँ हैं। गीता के अठारह अध्याय भी संगमरमर पर अंकित हैं। श्री कृष्ण और अर्जुन की सुन्दर प्रतिमाएँ मन्दिर में स्थापित हैं। उपवन में बड़ा संगमरमर का चार घोड़ों से जुता हुआ एक रथ है। एक सुन्दर धर्मशाला और संस्कृत विद्यालय है। वास्तव में यदि कुरुक्षेत्र में कोई मन्दिर है तो यही है।

बाण गंगा तीर्थ

कुरुक्षेत्र तीर्थ के दक्षिण में तीन मील कच्चे मार्ग पर बाण गंगा तीर्थ है। इसी मार्ग पर तीर्थ कुरुक्षेत्र से एक फर्लांग की दूरी पर बाबा नानक का गुरुद्वारा सिद्धवटी है। बाण गंगा तीर्थ छोटा पक्का सरोवर है। यहाँ बैसाखी का मेला लगता है। महाभारत युद्ध में जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा किए हुए अर्जुन ने दो पहर को यहाँ कुछ देर आराम किया और बाण मार कर पृथ्वी से गंगा निकाली। अर्जुन के घोड़ों ने जल पिया और भगवान कृष्ण ने घोड़ों को जल में स्नान करवाया।

आपगा तीर्थ

पुराणों में आपगा कुरुक्षेत्र की एक नदी का नाम है। परन्तु इस समय कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दक्षिण में यह एक छोटा सा सुन्दर पक्का और प्राचीन तीर्थ है। पौष कृष्णपक्ष चतुर्दशी को मध्याह्न में पिण्डदान करने से मोक्ष प्राप्त होता है। पुराणों में लिखा है कि इस स्थान पर घी में बनाए हुए सामकों का ब्राह्मण भोजन कराने से पितर सदा के लिए तृप्त हो जाते हैं। जो लोग गयाजी नहीं जा सकते वे पितरों को तृप्त करने के लिए इस तीर्थ पर पिण्डदान करते हैं।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

वैदिक संस्कृति के प्रचारार्थ—संस्कृत के माध्यम से विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी ने इस गुरुकुल की नींव रखी। पर्याप्त भूमि और धन थानेसर के रईस लाला ज्योतिप्रसादजी ने दान दिया। इस क्षेत्र में प्राचीन संस्कृति और संस्कृत और हिन्दी भाषा के लिए इस संस्था ने सराहनीय कार्य किया है।

नरकातारी (भीष्म कुण्ड बाण गंगा)

पक्की पहेवा रोड पर रेलवे स्टेशन कुरुक्षेत्र से तीन मील के अन्तर दाएँ हाथ ग्राम नरकातारी में भीष्म कुण्ड बाण गंगा नाम का तीर्थ है। तीर्थ बहुत छोटा है परन्तु इसमें जल वर्ष भर रहता है। महाभारत युद्ध के दसवें दिन आहत होकर पितामह भीष्म ने तीरों की शय्या पर छः मास तक मृत्यु की प्रतीक्षा की थी और कहते हैं कि इसी स्थान पर उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को शान्ति पर्व का उपदेश दिया था।

ज्योतिसर तीर्थ

पहेवा जाने वाली पक्की सड़क पर रेलवे स्टेशन कुरुक्षेत्र से पाँच मील की दूरी पर यह तीर्थ है। यह स्थान ज्योतिसर महादेव का है परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ भगवान्

कृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश दिया था। इस तीर्थ में सरस्वती का जल आता है। इस तीर्थ का जीर्णोद्धार स्वर्गीय स्वामी धरमानन्द सरस्वती ने किया। यह कूप का चबूतरा और एक मन्दिर महाराज दरभंगा ने निर्मित किया। एक मन्दिर महाराजा पटियाला और काश्मीर नरेश ने बनवाया था।

कमल नाभ तीर्थ

थानेसर शहर के पश्चिम में एक प्राचीन मन्दिर और तीर्थ है। कहते हैं कि यहीं से सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी। कृष्ण-जन्माष्टमी के शुभावसर पर यहाँ मेला लगता है।

मक़बरा शेख़ चेहल्ली

रेलवे स्टेशन कुरुक्षेत्र से कोई पौन दो मील पश्चिम में थानेसर नगर के उत्तर पश्चिमी कोण पर, अन्तिम हिन्दू चक्रवर्ती सम्राट हर्षवर्धन के किले के खण्डहरों के पूर्व में संगमरमर का एक सुन्दर मक़बरा है, जोकि इतना ऊँचा है कि पाँच-पाँच मील की दूरी से दिखाई देता है। बारह बुर्जियों के मध्य दस एकड़ धरती पर यह मक़बरा टीले की चोटी पर निर्मित है। मक़बरे की पश्चिम की ओर की चोटी पर ग्राम बाहरी और पूर्व की ओर की चोटी पर थानेसर नगर की आबादी का क्रम दूर तक चला गया है। मक़बरे के दक्षिण पूर्व में थानेसर नगर है। पश्चिम में सम्राट हर्षवर्धन के किले के खण्डहर और कुतुब-जमालुद्दीन साहब का मक़बरा और उत्तर में सम्राट् शेरशाह सूरी की लम्बी-चौड़ी टूटी सराएँ हैं। यह मक़बरा मुग़ल निर्माण-शैली का सुन्दर प्रतिनिधि है जो कि घटिया संगमरमर के आठ कोनी टैंप पर बना हुआ है। कोई-कोई पत्थर साफ़ और अच्छे संगमरमर का भी है परन्तु अधिक संख्या मटियाले और काली धारियों वाले संगमरमर की है। मक़बरे के गुम्बद के चारों ओर छोटी ईंटों से बनी किनारी है जिस पर चूने का पलस्तर किया हुआ है। मक़बरे के अन्दर दो क़बरें हैं—एक तो शेख़ चेहल्ली साहब की दूसरी न जाने किसकी। मक़बरे की बनावट देखने योग्य है। मक़बरे से पन्द्रह-बीस पग पर पश्चिम की ओर खुरदरे भूरे पत्थर का मक़बरा है जिसमें न जाने किन पुरुषाओं की क़बरें हैं। दक्षिण की ओर एक बड़ी चौकोर ख़ानक़ाह है, जिसकी छतें डाट की हैं जो कुछ टूट गई हैं और कुछ ठीक दशा में हैं। ख़ानक़ाह के मध्य में पानी का हौज़ है जिसके बीच का फ़व्वारा समय की [illegible] पर [illegible] चुका है। इस हौज़ को पानी से भरने के लिए ख़ानक़ाह की दक्षिणी सीमा पर बाहर की ओर एक बहुत गहरा कुआँ है। ख़ानक़ाह में अब यहीं से राजकीय स्कूल चल रहा है। मक़बरे पर जाने के लिए ख़ानक़ाह में से जाना पड़ता है जिसके दो द्वार पूर्व और पश्चिम में हैं। मक़बरे के चारों ओर बनी बुर्जियों पर रंगीन चित्रकारी का काम हुआ है जो धीरे धीरे गुम हो रहा है और नीचे की काली भूमि उभरने लगी है। हज़रत शेख़ चेहल्ली की वास्तविक क़बर मक़बरे के नीचे है जिसका मार्ग ख़ानक़ाह के एक कमरे से सुरंग द्वारा जाता है। देहली से अमृतसर तक पंजाब भर में इस मक़बरे के अतिरिक्त और कोई संगमरमर की मुग़ल निर्माण का प्रतिनिधित्व करने वाली इमारत नहीं। मक़बरे का गुम्बद देहली-स्थित सम्राट हुमायूँ के मक़बरे के गुम्बद से सुन्दर है।

इस मक़बरे का उस शेख़ चेहल्ली से कोई सम्बन्ध नहीं जिसकी कि मुलतान की

कहानियाँ प्रचलित हैं। तजकराते-औलिया के अनुसार हजरत शेख चेहली एक ईरानी साधु थे जो मुगल सम्राट् शाहजहाँ के शासनकाल में भारत में हजरत कुतुब जलालुद्दीन से मिलने थानेसर आए थे। कहते हैं कि हजरत जलालुद्दीन कुतुब उस समय के सूफी-सम्प्रदाय के सिद्ध साधु थे। उनकी तपस्या की ख्याति भारत की सीमाएँ पार कर गई थी।

एक बार सम्राट् शाहजहाँ ने लाहौर से देहली जाते हुए बड़ी सेना के साथ थानेसर में पड़ाव डाला। हजरत कुतुब-जलालुद्दीन साहब ने सम्राट् और उसकी सेना को भोजन का निमन्त्रण दिया। कहावत है कि कुतुब साहब ने एक प्याला पानी और आधी रोटी से समस्त मुगल सेना को भोजन करवा दिया। सम्राट् इस चमत्कार को देखकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने कुतुब साहब के लिए यह मकबरा बनवा दिया। उन्हीं दिनों हजरत शेख चेहली कुतुब साहब से मिलने आए और प्राणायाम करते हुए स्वर्ग सिधारे। कुतुब जलालुद्दीन के परामर्श से शेख चेहली साहब को इस मकबरे में समाधि दे दी गई और तब से यह मकबरा शेख चेहली कहलाने लगा। इस मकबरे के नाम कोई धरती नहीं है। हजरत कुतुब जलालुद्दीन का मकबरा जो निकट ही बना है के नाम घासपुर तलहेड़ी इत्यादि ग्रामों की धरती है।

मराठों और अफगानों के संघर्ष और सिख सतलुज स्टेटस के दिनों में इस मकबरे की कोई देखरेख नहीं हुई। अंग्रेजों ने मकबरे की मरम्मत करवाई। देश के विभाजन सन् १९४७ के दिनों में किसी ने मकबरे के अन्दर का पत्थर उखाड़ लिया जिसको फिर किसी ने नहीं लगवाया।

कालेश्वर तीर्थ

थानेसर शहर के पश्चिमी-उत्तरी कोण पर यह तीर्थ है। यहाँ माघ मास में स्नान का माहात्म्य है।

सम्राट् हर्षवर्धन के किले का खण्डहर

मकबरा शेख चेहली के पश्चिम में यह विशाल खण्डहर कमल नाभ तीर्थ से कालेश्वर तीर्थ तक फैला हुआ है। इस खण्डहर की खुदाई होना आवश्यक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने वालों के लिए यह खण्डहर बहुत महत्त्व रखता है।

स्थाणीश्वर महादेव मन्दिर व तीर्थ

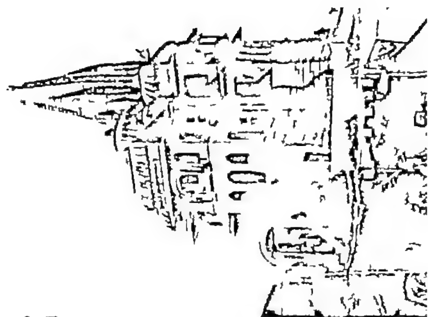
थानेसर शहर से उत्तर में दो फर्लांग की दूरी पर यह प्रसिद्ध मन्दिर व तीर्थ है। आधुनिक मन्दिर पानीपत के तृतीय युद्ध के सेनानी सदाशिवराव भाऊ द्वारा निर्मित है। इसी मन्दिर के नाम पर थानेसर अर्थात् स्थाणीश्वर शहर का नाम है। इस तीर्थ पर कार्तिक के पूरे मास स्नान व पूजा होती है। प्रति सोमवार को बहु संख्या में लोग मन्दिर के दर्शनार्थ जाते हैं। यहाँ शिवरात्रि का बड़ा मेला लगता है और एक अखण्ड ज्योति जलती रहती है। वामन पुराण के अनुसार राजा वेण का कुष्ठ इस तीर्थ में स्नान करने से दूर हो गया था।



श्री ध्रुव नारायण का मंदिर, जो सन्निहित तीर्थ पर बना है

महाराजा पटियाला द्वारा निर्मित गीता मंदिर-ज्योतिसर





गुरुद्वारा नवीं पातशाही

स्थाणु तीर्थ के उत्तर-पूर्वी कोण पर नवें सिख गुरु तेगबहादुरजी का ऐतिहासिक गुरुद्वारा है।

भद्रकाली-दुर्गाकूप

भगवती दुर्गा के प्रसिद्ध स्थानों में से है। यहाँ सती का दाहिना पाँव गिरा था। यह सिद्ध पीठ है। थानेसर शहर के उत्तर में पक्की सड़क झाँसा रोड पर है। महाभारत काल में अर्जुन ने रणचण्डी के रूप में इसका आह्वान किया था। कुछ व्यक्ति इसी कारण इसे रण चण्डी का मन्दिर भी कहते हैं। यहाँ पर पहले घोड़े की बलि दी जाती थी। आज भी कुएँ के चारों ओर मिट्टी के घोड़े रखे हुए हैं।

प्राची-सरस्वती

कहते हैं कि गंगाजी के पाप भी इस तीर्थ में स्नान करने से दूर होते हैं। तीर्थ बहुत छोटा है, जिसमें सरस्वती का जल आता है।

कुबेर तीर्थ

सरस्वती नदी के तट पर छोटा-सा पक्का तीर्थ है। इस तीर्थ की खुदाई में चौथी शताब्दी की भगवान विष्णु और शिव-पार्वती की मूर्तियाँ निकली थीं जो यहीं रखी हुई हैं। यहाँ महाराज कुबेर ने तप किया था।

महाराजा फरीदकोट की समाधि

सिख निर्माण कला (अर्थात् मुगल और राजपूत निर्माण कला का मिश्रित रूप) में बनी हुई समाधि है, जो सुन्दर बनी हुई है और सरस्वती नदी के तट पर है। इस भवन की चित्रकारी प्राचीन भारतीय चित्रकला का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस समाधि की देखरेख और प्रबन्ध अब भी महाराजा फरीदकोट की ओर से होता है। समाधि के चारों ओर आम के घने वृक्ष हैं।

सम्वत् १९११ में महाराजा फरीदकोट वजीरसिंह ने समस्त कुरुक्षेत्र भूमि का भ्रमण करके सरस्वती तट पर अपने प्राण त्यागे थे।

अंग्रेजी राज्यकाल में १८९२ ई० से यह प्रथा रही कि जब प्रथम बार गवर्नर जनरल (वायसराय) कुरुक्षेत्र पधारें तो श्री पंचायत ब्राह्मणान् रजिस्टर्ड कुरुक्षेत्र को पाँच सौ रुपए भेंट करें और जब प्रथम बार प्रान्त के गवर्नर कुरुक्षेत्र आएं तो अढ़ाई रुपए भेंट करें।

श्री कुरुक्षेत्र का परिक्रमा भ्रमण

१ उत्तरपक्ष

१ रत्नुक यक्ष २ कोटी तीर्थ ३ वृद्धकन्या तीर्थ ४ गंगाहृद तीर्थ

२ अमीन ग्राम

सुन्दरपुर, बड़ी गोवर्धनपुर, अमीन यह सब अदिति वन में है। १ सूर्य कुण्ड तीर्थ २ अदिति कुण्ड ३ चक्रव्यूह तीर्थ ४ वामन कुण्ड तीर्थ ५ सोम कुण्ड तीर्थ ६ अश्विनी कुमार तीर्थ।

३ सगा ग्राम

अदिति वन से चलकर विष्णु स्थान सगा बड़पथ से पोंयडा ग्राम १ दुदू तीर्थ २ विमल तीर्थ ३ विमलेश्वर तीर्थ।

४ मसीसपुर ग्राम

पाराशर ग्राम १ अवन तीर्थ २ ब्रह्मस्थान तीर्थ।

५ बालू ग्राम

१ कौशिकी-संगम तीर्थ २ पृथ्वी तीर्थ ३ बालू तीर्थ।

६. म गोप ग्राम

१ दशरथ तीर्थ।

७. शाम्बर ग्राम

१ पुष्कर तीर्थ २ नागम तीर्थ ३ पुरन्दर तीर्थ।

८ कुहिस्माणा ग्राम

१ कोटी तीर्थ

९ सासवरा ग्राम

१ पावन तीर्थ २ हंस तीर्थ

१० सर्पदमन (सफीदों ग्राम)

रसातु ब्रह्म तीर्थ सीमरा ग्राम और फिर सफीदों यहाँ परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने नागयज्ञ किया था।

११ सोसग्राम (पाथी)

पाथी से बहादुरपुर इसके आग्नेय कोण में पूर्व दिशा में अरन्तुक यक्ष है इसको यक्ष तीर्थ कहते हैं। यहाँ तारसु तीर्थ भी है।

१२ परास ग्राम

१ पंचनद तीर्थ २ कामिवता तीर्थ ३ काटी तीर्थ ४ कोटेश्वर महादेव तीर्थ आदि स्थित हैं।

१३ सोयथा ग्राम

पासन ग्राम जाते हुए मार्ग में कसौटी कामग्राम। पासन में १ ययाति कुण्ड तीर्थ २ सूर्य कुण्ड तीर्थ ३ रूप तीर्थ, ४ अस्वेती तीर्थ।

१४ पुलहड़ ग्राम

वराह खेड़ी में वराह तीर्थ।

१५ रघुमपुर ग्राम

यहाँ उत्तर की ओर ऋषियों के सात कुण्ड हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व में सूर्य कुण्ड और पश्चिम में चक्रमुम तीर्थ है। इसी ग्राम के निकट भूतेश्वर महादेव का मन्दिर है। ज्योति ग्राम के निकट व्यासमासेश्वर तीर्थ है।

१६ जींद ग्राम

जींद नगर से ईशान कोण में १ प्रसिमारा तीर्थ है। जींद नगर के पूर्व में २ मिलमती तीर्थ है ३ सोम तीर्थ ४ व्यासमासेश्वर तीर्थ।

१७ पुनपुना ग्राम

पुनपुना ग्राम से एक कोस पर वराहखेड़ी में हलपीन तीर्थ है।

१८ पुष्कर खेड़ी

१ मुञ्जवट तीर्थ।

१९ रामहृद ग्राम

यहाँ चार यक्ष निवास करते हैं। महापथिकी रमारव कपिस यक्ष उदूखला यक्षिणी।

१ हत्याहरण तीर्थ २ सूर्य कुण्ड तीर्थ ३ परशुराम तीर्थ

२० विरसोला ग्राम

१ वंशमूल तीर्थ

२१ कसूर ग्राम

१ कायसोधन तीर्थ

२२ लोहापार ग्राम

१ लोकोद्धार तीर्थ २ कुप तीर्थ ३ सूर्यकुण्ड

२३ मझौर ग्राम

१ श्री तीर्थ २ शिव लिंग तीर्थ ३ मुकुट तीर्थ

२४ कलायत ग्राम

१ कपिलाहृद तीर्थ २ कपिलेश्वर तीर्थ

२५ कुहारा ग्राम

१ मणामकन तीर्थ २ गणेश तीर्थ

२६ सजूमा ग्राम

१ सूय तीर्थ २ सूर्य कुण्ड

२७ सांगिणी ग्राम

१ सांगिनीदेवी तीर्थ २ सूर्य तीर्थ ३ ब्रह्म तीर्थ ४ देवी तीर्थ।

२८ वराह ग्राम

१ द्वारपाम वासुकी यक्ष २ यक्षतीर्थ ३ ब्रह्म कुण्ड ४ वैमुक तीर्थ।

२९ मारणश ग्राम

१ ब्रह्मा तीर्थ

३० पौलबी ग्राम

१ मुक्ति तीर्थ २ भवनी तीर्थ।

३१ सोवन ग्राम

१ श्री तीर्थ २ ढंडन तीर्थ ३ स्वानुसोम तीर्थ ४ महर्षि तीर्थ ५ म्युखण तीर्थ ६ दशाश्वमेध तीर्थ।

३२ मारुस ग्राम

१ मानुप तीर्थ।

३३ गायत्री ग्राम

१ गायत्री नदी तीर्थ २ सप्त ऋषि तीर्थ ऋषियों के नाम ये हैं—भरद्वाज गौतम जमदग्नि काश्यप विश्वामित्र वशिष्ठ अत्रय।

३४ कैपल नगर

१ वृद्धकेदार २ क्षिप्री तीर्थ ३ नकुली तीर्थ ४ कर्दम तीर्थ ५ क्षिप्री ६ पुण्डरीक ७ यंजनी मन्दिर।

३५ पयोकृत ग्राम

१ कोटीकूट तीर्थ।

३६ बरौठ ग्राम

१ बटेश्वर तीर्थ २ विन्ध्या तीर्थ।

३७ नागरव घोस ग्राम

१ पुण्डरीक तीर्थ।

३८ रमोठा ग्राम

१ त्रिविष्टप २ वैतरणी नदी तीर्थ ३ मूलपापविमोचन तीर्थ।

३९ सकरा ग्राम

१ शक्रावर्त तीर्थ २ पपमापेक तीर्थ।

४० फरस ग्राम

१ सोमवती तीर्थ २ सर्वासंकट तीर्थ ३ पानिखात तीर्थ ४ सूर्य कुण्ड ५ सुक तीर्थ।

४१ तिसग ग्राम

१ यची तीर्थ २ मिमक तीर्थ ।

४२ बरास ग्राम

१ मनोकामना तीर्थ २ कोटि तीर्थ ३ पंचक तीर्थ ४ सूर्य कुण्ड, ५ तिलोतमा तीर्थ ।

४३ रसीणा ग्राम

१ ऋणमोचन तीर्थ ।

४४ मोहिणा ग्राम

मोहिणा इण्डना और हाबड़ी इन तीन ग्रामों में १ कुम्भ तीर्थ २ काम्य तीर्थ ३ सूर्य कुण्ड तीर्थ ४ मधुबन तीर्थ ।

४५ बसतली ग्राम

इसका शुद्ध नाम व्यासस्थली है। यहाँ व्यासस्थली नाम का तीर्थ है।

४६ सीतामठ ग्राम

१ वेदी तीर्थ है।

४७ कोईठ ग्राम

१ कौशिकी महारद तीर्थ ।

४८ हिसैड़ ग्राम

१ पुलिन तीर्थ २ वर्धन तीर्थ ३ हिरण्यवती तीर्थ ।

४६ निगपू ग्राम

१ मन्दाकिनी तीर्थ, २ रुद्रपद तीर्थ ३ पद्म तीर्थ ।

५० बड़साम ग्राम

१ विष्णु तीर्थ २ ज्येष्ठाश्रम तीर्थ ३ कोटि तीर्थ ४ सूर्य तीर्थ ५ कुमोतारण तीर्थ ।

५१ किरमिच ग्राम

१ कुमोतारन तीर्थ २ अहिकुण्ड तीर्थ ३ केसरी तीर्थ ।

५२ पवनावा ग्राम

१ पवनरद तीर्थ २ ममस तीर्थ ३ अमृतस्थली तीर्थ ।

५३ धरसाना ग्राम और कोल ग्राम

१ कामेश्वर तीर्थ २ धरावतरण ।

५४ कारसा ग्राम

१ कारन्धव तीर्थ ।

५५ सारसा ग्राम

१ सालीहोत्र तीर्थ ।

५६ व्यासखेड़ी ग्राम

१ वैशम्पायन हृद ।

५७. मसखल खेड़ी ग्राम

१ सूर्य तीर्थ ।

५८ कक्केवर ग्राम

१ भीकुम तीर्थ ।

५९ नाऊथ ग्राम

१ बिहार कुण्ड तीर्थ ।

६० बसौती ग्राम

१ बबवती तीर्थ ।

६१ भाणा ग्राम

१ ब्रह्मस्थानिक तीर्थ ।

६२ गुमथला ग्राम

१ सोम तीर्थ ।

६३ मथण ग्राम

१ सप्त सारस्वता तीर्थ २ सुप्रभा ३ कांचनाक्षी ४ विद्या ५ सुमनोहरा ६ सुवेणु ७ ओघ नाम सरस्वती ८ विमलोदका ।

६४ सतोड़ा ग्राम

१ कपालमोचन तीर्थ २ शुक्र तीर्थ ।

६५ पहेवा ग्राम

१ ब्रह्मयोनि तीर्थ २ अग्नि तीर्थ ३ उर्वक तीर्थ ४ प्रतिसन तीर्थ ५ शिशु तीर्थ ६ मनोवती तीर्थ ७ विश्वामित्र तीर्थ ८ सोम-कार्तिकेय मन्दिर ।

६६ उरणाय (हरणाय) ग्राम

१ वसिष्ठ प्राची तीर्थ २ अवणाय सगम तीर्थ ३ समुद्र तीर्थ ।

६७ कमोवा ग्राम

१ कामेश्वर तीर्थ ।

सन्दभ पुस्तक-सूची

	Title	Author
1	Asura India Patna 1926	by Banerji Sastri.
2	Aryan Immigration into Eastern India	by Bhandarkar D R.
3	Lectures on the Ancient History of India	by
4	Some aspects of Ancient Indian Culture	by '
5	Aryans in Eastren India in Rigvedic Age	by Chakladar H C
6	Eastern India and Aryavarta	by
7	The Ancient Geography of India	by Cunningham A
8	Rigvedic India Calcutta 1921	by Dass A. C
9	The Geographical Dictionary of ancient-Medieval India	by Dey N L.
10	Anthropo Geography of Vedic India	by Dikshitar V R. R
11	Aryanisation of Eastren India	by
12	Aryanisation of India	by Dutt, N K.
13	Das purana Panchalakshana	by Kirfel W
14	Rivers of India	by Law B. C
15	Tribes in ancient India	by "
16	Ancient Indian Historical Tradition	by Pargiter F E.
17	Daynasties of Kaliage	by ,
18	Chronology of ancient India	by Prahan S. N
19	Pro Muslman India	by Rangacharya V
20	Indo-Iranian Border lands	by Stein M A
21	On Some Rivers names in Rigveda	by "
22	The Rigveda & The Punjab	by Woolner A C.